श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द संदेश

श्री आनन्दपुर

जुलाई १९८३

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

अधिपति

श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी

श्री आनन्दपुर

सम्पादकः—महात्मा योगात्मानन्द

जुलाई १९८३

वार्षिक शुल्क देश के लिये	१२—००
वार्षिक शुल्क विदेश के लिये समुद्री डाक द्वारा	३०—००

Foreign Subscription Rates (By Air Mail)

Asia—	54—00
U. K. & Europe—	72—00
U. S. A & CANADA—	84—00

विषय—तालिका

आनन्द—सन्देश *** जुलाई १९८३

अनुक्रमणिका ***		पृष्ठ संख्या
१—श्री गुरु-वन्दना		३
२—श्री परमहंस अमृत कथा	(अमर प्रसंग)	६
३—कल्याण मार्ग		१२
४—दरबार-महिमा	(भजन)	२६
५—सदुपदेश		२७
६—कविता		३८
७—वास्तविक कर्त्तव्य		३९
८—उपदेश	(भजन)	५१
९—श्री अमर वाणी	(माया के धोखे से बचो)	५२

प्रकाशक—'श्री परमहंस अद्वैत मत पब्लिकेशन सोसायटी' ने आनन्द प्रिंटिंग प्रेस में छपवा कर आनन्द सन्देश कार्यालय श्री आनन्दपुर जिला गुना (म० प्र०) से प्रकाशित किया ।

श्री सद्गुरु देवाय नमः

श्री परमहंस अद्वैत मत का

मासिक

आनन्द सन्देश

श्री आनन्दपुर

जुलाई सन् १९८३ ई० सौर श्रावण सं० २०४० वि०
वर्ष ३१ | [अङ्क ७

अथ

श्री गुरु-वन्दना

॥ दोहा ॥

परब्रह्म गुरुदेव जी, कृपासिन्धु करुणेश ।
चरणकमल वन्दन किये, मिलता सुख अशेष ॥
परम पुरुष गुरुदेव को, साष्टांग प्रणाम ।
दुखभंजन भवभयहरण, आनन्दकन्द सुखधाम ॥
युगल चरण गुरुदेव के, करूँ हृदय आसीन ।
मधुकर बन पद-पद्म के, रहूं ध्यान में लीन ॥

परम हितैषी सबन के, सतगुरु सच्चिदानन्द ।
मोह माया के जाल से, करते जीव स्वच्छन्द ॥

तीन लोक के हैं धनी, सतगुरु पूरणकाम ।
आप्तकाम हो जीव वह, जपे जो आठोंयाम ॥

वचनामृत का पान कर, मन पावै विश्रान्ति ।
मोह ममता का तिमिर अरु, नाशै सकल भ्रान्ति ॥

निरखत प्रेमी नयन जब, श्री मुखचन्द्र की ओर ।
हृदय-समुद्र में प्रेम की, लेवें तरंग हिलोर ॥

अतुल प्रेम भंडार हैं, श्री सतगुरु भगवान ।
अपनी कृपा से अहनिशि, करते जन कल्यान ॥

अष्टप्रहर गुरुदेव का, करै हृदय में ध्यान ।
अविचल प्रेम अरु भक्ति का, पावै वह वरदान ॥

सतगुरु सम संसार में, नहीं हितैषी अन्य ।
चरण शरण जाको मिले, ताके भाग्य हैं धन्य ॥

सकल आश्रय छोड़ कर, जो आवे तव द्वार ।
ओट आसरा बख्श कर, करते भवजल पार ॥

मोह-ममता के जाल में, फंसा सकल संसार ।
जग में केवल सतगुरु, बंध छुड़ावनहार ॥

चौरासी छूटे नहीं, जप तप करे हजार ।
कर्म लेख तब ही मिटे, आवे गुरु चरणार ॥

परमधाम को छोड़कर, आये सतगुरुदेव ।
जीवों के दुख हर रहे, देकर भक्ति मेव ॥

सार शब्द सतगुरु दिया, भव का मेटनहार ।
पल पल जो सुमिरण करे, निश्चय हो निस्तार ।।

'दासनदास' विनयय यही, दीजो अपनो प्रीत ।
अष्टप्रहर लागा रहै, पद-पंकज में चीत ।।

इति शुभम

शुभ सूचना

१. श्रावण सं० २०४० वि० की सक्रान्ति १६ जुलाई सन १९८३ ई० शनिवार को होगी ।

२. श्री व्यासपूजा (गुरु-पूर्णिमा) २४ जुलाई सन् १९८३ ई० रविवार को होगी ।

३. भाद्रपद सं० २०४० वि० की सक्रान्ति १७ अगस्त सन् १९८३ ई० बुधवार को होगी ।

४. रक्षाबंधन २३ अगस्त सन् १९८३ ई० मंगलवार को होगा ।

५. जन्माष्टमी ३१ अगस्त सन् १९८३ ई० बुधवार को होगी ।

श्री परमहंस अमृत कथा

॥ दोहा ॥

सतगुरु दीन दयाल जी, कोटिन कोटि प्रणाम ।
जिनके चरणों में मिले, सुख शान्ति विश्राम ॥
नमो नमो गुरुदेव जी, परमेश्वर परब्रह्म ।
भव-वारिधि के तरन को, साधन दिये सुगम ॥
कर्ता धर्ता जगत के, अग-जग पालनहार ।
आस भरोसे छोड़ सब, गही ओट तुम्हार ॥
जब ही से दृढ़ कर गही, श्री चरणन की टेक ।
आधि व्याधि सब ही टली, मिट गई चिंता रेख ॥
चरण शरण गुरुदेव को, सुखदायक सुखरूप ।
सुखी हुआ है 'दास' यह, पाकर चरण अनूप ॥

प्रातः स्मरणीय, वन्दनीय, भक्तवत्सल श्री परमहंस सद्गुरुदेव दीन दयाल जी श्री श्री १०८ श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री चतुर्थ पादशाही जी के कलिमल नाशक, भवभयहारी, सभी मनोरथों को पूर्ण करने वाले, सुखद, वरद श्री चरणारविन्दों में दासानुदास का श्रद्धा एवं आस्था सहित कोटि-कोटि दण्डवत्-प्रणाम है, जिनकी छत्र-च्छाया प्राप्त होते ही मनुष्य काल के भय और आवागमन के चक्र से मुक्त होता और सच्चे सुख-आनन्द को प्राप्त करता है। पूर्ण सद्गुरु के चरणकमलों पर बलिहार जाते हुये सत्पुरुष फरमाते हैं:—

गुर पूरे जब भए दइआल ।। दुख बिनसे पूरन भई घाल ।।
पेखि पेखि जीवा दरसु तुम्हारा ।। चरण कमल जाई बलिहारा ।।

गुरुबाणी, सूही म० ५

एक अन्य स्थान पर फ़रमान है:—

चरण कमल सरणाई आइआ ।। साध संगि है हरि जसु गाइआ ।। जनम मरण सभि दूख निवारे जपि हरि हरि भउ नही काल का ।।

गुरुबाणी, मारू म० ५

श्री श्री १०८ श्री स्वामी बेअन्त आनन्द जी महाराज श्री चतुर्थ पादशाही जी यद्यपि जन्मजात अवतारी विभूति और पूर्ण पुरुष थे, परन्तु गुरु-भक्ति के सिद्धान्तों एवं नियमों को सुदृढ़ करने के लिये आपने स्वयं भी इन नियमों को पूरी तरह अपनाया और इस प्रकार भक्ति-पथ पर चलने वाले जिज्ञासुओं के समक्ष एक आदर्श प्रस्तुत किया। आपका आचरण-मय जीवन इस बात का प्रत्यक्ष साक्षी है। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की प्रत्येक श्री आज्ञा-मौज को शिरोधार्य कर आप उसे पूरा करने में किस प्रकार प्राणपण से जुट जाते, यह आपकी जीवन-झलकियों से स्पष्ट प्रकट है।

एक बार का वर्णन है कि श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री श्री १०८ श्री स्वामी स्वरूपानन्द जी महाराज श्री द्वितीय पादशाही जी जबकि 'टल' में विराजमान् थे, उनकी मौज कालाबाग की भूमि खरीदने की हुई, अतः उन्होंने कुछ सेवकों को उसे खरीदने के लिये आज्ञा फ़रमाई। वे सेवक आज्ञा

पाकर वहां से चल तो दिये, परन्तु धनाभाव तथा कुछ अन्य कठिनाइयों के कारण इस कार्य को पूरा करने में असफल रहे और बिना भूमि खरीदे ही वापस लौट आये।

एक दिन आप (श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज) जब श्री सद्गुरुदेव महाराज जी के श्री पावन दर्शनों के लिये श्री चरणों में उपस्थित हुये, तो श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने आपको तथा भक्त साहिबराम जी को अपने निकट बुलाया तथा उन्हें अपनी मौज के विषय में बतलाकर कालाबाग की भूमि क्रय करने की आज्ञा फ़रमाई। आपने श्री आज्ञा को शिरोधार्य किया और यथासम्भव साधनों से धन एकत्र करके यथाशीघ्र ही कालाबाग की भूमि को खरीदकर श्री मौज को पूरा किया। श्री सद्गुरुदेव महाराज जी आपकी इस सेवा से अति प्रसन्न हुये।

इसी प्रकार एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी की श्री मौज लक्की मरवत् में भण्डारा करवाने की हुई और उस भण्डारे के पूरे व्यय की सेवा आपके ज़िम्मे लगाई। श्री आज्ञा को शिरोधार्य कर आप इस कार्य को भी सम्पन्न करने में सफल हुये। यद्यपि महापुरुष सर्व सम्पदाओं के स्वामी होते हैं और प्रकृति की समस्त शक्तियां उनकी सेवा करने के लिये हर समय तत्पर रहती हैं, परन्तु जैसा कि पहले लिखा जा चुका है कि गुरु-भक्ति के सिद्धान्तों को अपनाकर तथा सद्गुरु की आज्ञा-मौज के अनुरूप स्वयं को ढाल कर वे संसार के सम्मुख एक ज्वलन्त प्रमाण प्रस्तुत करते हैं जिससे कि जिज्ञासुजन भी उनके चरण-चिन्हों पर चलकर अर्थात् सद्गुरु की आज्ञा-मौज के अनुरूप स्वयं को ढालकर अपना

जोवन सफल कर सकें।

भण्डारे का कार्यक्रम सम्पूर्ण होने के उपरांत श्री सद्गुरुदेव महाराज जो ने आपको अपने निकट बुलाया और निजी मौज में आकर फ़रमाया—आज हम आप पर अत्यधिक प्रसन्न हैं। आज आप हमसे जो कुछ भी मांगना चाहें, माँग सकते हैं; हम आपको सब कुछ देने को तैयार हैं।

आपने नम्रतापूर्वक श्री चरणों में विनय की—प्रभो ! हृदय में आपके श्री चरणकमलों की निश्चल एवं दृढ़ भक्ति बनी रहे, केवल यही मेरी अभिलाषा है।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया—ठीक है। इस दोहे को तोन बार पढ़ो:—

॥ दोहा ॥

भक्ति दान मोहि दोजिये, गुरु देवन के देव।
और नहीं कछु चाहिये, निसदिन तेरी सेव॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

आप (श्री चतुर्थ पादशाही जी महाराज) अपने श्रीमुख से प्राय: ये वचन फ़रमाया करते थे कि सद्गुरु चाहे कितनो भी दात जीव को क्यों न बख्शें, सेवक को सदैव विनम्र एवं दीन बनकर सादगी से जीवन व्यतीत करना चाहिये और सद्गुरु-आज्ञा का पालन करने में सदैव तत्पर रहना चाहिये। आपके हृदय में सेवकभावना सदैव विद्यमान रहती थी। आप सबको यही उपदेश किया करते थे कि सेवक बनने में बहुत सुख है। श्री दरबार की सेवा चाहे किसी प्रकार की भी क्यों न हो, सेवक का धर्म है कि सेवाभाव तथा कर्त्तव्य

की दृष्टि से प्रत्येक सेवा करे। चाहे वह झाड़ू लगाने की सेवा हो अथवा कोई अन्य सेवा—सेवक को चाहिये कि उसे श्रद्धा, विश्वास एवं लगन से करे। सेवक को सेवा का अहंकार कदापि नही करना चाहिये, क्योंकि सेवक जब तक अभिमान तथा अहम्भावना को पूर्णतः मिटा नहीं देता, तब तक कुछ प्राप्त नहों कर सकता। सेवक का पद यद्यपि अत्यन्त उच्च है, परन्तु सेवकधर्म निबाहना अर्थात् श्रद्धा और लगन से मन में नम्रता धारण करके सेवा करना अत्यन्त कठिन है, क्योंकि इस मार्ग में स्वयं को मिटाना पड़ता है। गुरु-भक्ति के पथ पर चलने वाले सेवक शिष्य के लिये कहा भी गया है कि:—

॥ शेअर ॥

मिटा दे अपनी हस्ती को, अगर कुछ मर्तबा चाहे।
कि दाना ख़ाक में मिलकर, गुलो गुलज़ार होता है ॥

ऐ जीव ! यदि तू कुछ प्राप्त करने का इच्छुक है, तो अपने अस्तित्व को अर्थात् अपनी अहंता को पूरी तरह मिटा दे, क्योंकि दाना (बीज) जब मिट्टी में पूर्णरूप से मिल जाता अर्थात् अपने आप को मिटा देता है, तभी वह पौधा बनकर फूलता फलता है। इसलिये यदि कुछ बनने की अभिलाषा है, तो स्वयं को मिटा दो अर्थात् अहंता-अहंकार का त्याग कर दो। अहंकार की भावना जीव की जन्मों-जन्मों की कमाई को एक क्षण में नष्ट कर देती है।

आपके ये वचन कथनी मात्र ही नहीं थे, प्रत्युत इनपर यथार्थरूप में आचरण करके आपने सबके सम्मुख एक आदर्श

प्रस्तुत किया। श्री आज्ञा का अक्षरशः पालन करना तथा हृदय में नम्रता धारणकर दरबार की सेवा में तत्पर एवं संलग्न रहना ही आपके जीवन का ध्येय बन गया था।

क्रमशः

आवश्यक सूचना

सब पाठकों को सूचित किया जाता है कि 'आनन्द-सन्देश' पत्रिका के विषय में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार करते समय अथवा मनीआर्डर भेजते समय अपनी ग्राहक संख्या (चिट नम्बर) अवश्य लिखें। ग्राहक संख्या पते वाली चिट के ऊपर लिखी होती है। ग्राहक संख्या न होने से पत्र की तामील में कठिनाई होती है।

प्रबन्धक
आनन्द सन्देश कार्यालय

कल्याण मार्ग

मालिक की मौज को शिरोधार्य करो

(१५८)

"संसार में दो प्रकार के मनुष्य हैं—एक तो वे हैं जो मनमति अनुसार कार्यवाही करने अर्थात् मन के कहने पर चलने में प्रसन्नता अनुभव करते हैं और दूसरे वे हैं जो मालिक की मौज को शिरोधार्य कर सदैव प्रसन्न रहते हैं। पहले प्रकार के मनुष्यों की प्रसन्नता में दुःख, शोक एवं चितायें समायी होती हैं, जबकि दूसरे प्रकार के मनुष्यों की प्रसन्नता अविनाशी होती है।"

व्याख्याः—उपरोक्त वचन में वर्णित जो पहली प्रकार के मनुष्य हैं, उनपर मन शासन करता है। मन उन्हें सब्ज़बाग दिखाकर और असत् आशायें दिला कर दिन-रात नचाता रहता है। यद्यपि मन के हाथ में कुछ भी नहीं होता, परन्तु अबोध मनुष्य उसकी चिकनी-चुपड़ी बातों के बहकावे में आ जाते हैं: परिणामस्वरूप भक्ति-परमार्थ के पथ पर चलकर आत्मोन्नति करने की अपेक्षा सांसारिक भोगों के पथ पर चलकर, जोकि मनुष्य को अवनति की ओर ले जाता है, वे अपनी हानि कर बैठते हैं। इसके विपरीत भक्तिमान् गुरुमुखों के हृदय पर कुल मालिक सन्त सद्गुरु का शासन होता है। ऐसे सौभाग्यशाली गुरुमुख मन-शत्रु को मालिक की आज्ञा-

मौज के शस्त्र से अपने अधीन कर लेते हैं। वे मन का कहना न मानकर मालिक की मौज को शिरोधार्य करते हैं; परिणाम-स्वरूप जीवन में उलटी-सुलटी परिस्थिति आ जाने पर भी वे उसे मालिक की मौज समझकर झोली में डालते और सदैव प्रसन्नचित्त रहते हैं। ऐसे गुरुमुख इस लोक में भी सुखी जीवन व्यतीत करते हैं और प्रभु के धाम मे भी उज्ज्वलमुख होते हैं।

मनुष्य मन का कहना मानकर लाख योजनायें बनाता रहे और मन ही मन प्रसन्न होता रहे, परन्तु होता तो वही है, जो प्रभु की इच्छा और मौज होती है, जैसा कि सन्तों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

आपन चेती होत नहिं, प्रभु चेती तत्काल।
बलि चहियो आकाश को, प्रभु पठियो पाताल ॥

बलि ने इन्द्रासन प्राप्त करने अर्थात् स्वर्ग पर राज्य करने के लिये यज्ञादि शुभकर्म किये, परन्तु प्रभु की मौज स्वर्ग के स्थान पर चूंकि उसे पाताल भेजने की थी, अतः हुआ भी वही, जो प्रभु की मौज थी।

भगवान् श्रीकृष्णचन्द्र जी महाराज भक्त उद्धव जी को उपदेश करते हुये फ़रमाते हैं कि—

॥ दोहा ॥

अपने मन कछु और है, दाता के मन और।
उद्धव से माधव कहै, झूठी मन की दौर ॥

भगवान् फ़रमाते हैं कि ऐ उद्धव ! जीव के अपने मन में

तो कुछ और विचार होता है, जबकि मालिक कुछ और ही सोच रहा होता है, इसलिये मन के समस्त विचार, सारी दौड़धूप व्यर्थ है, क्योंकि होना तो वही है जो मालिक की मौज है।

आम संसारी मनुष्य मन के धोखे में आकर और दिन-रात हवाई किले बनाकर अपनी शक्ति को व्यर्थ ही नष्ट करता रहता है। जब उसकी सोची हुई बात पूरी नहीं होती, तो फिर दुःखी और परेशान होता है। इसीलिये सन्तों सत्पुरुषों का उपदेश है कि मन के धोखे में आकर तथा उसके कहे अनुसार चलकर अपनी शक्ति को नष्ट न करो, प्रत्युत मालिक की मौज को शिरोधार्य करो। मालिक की मौज में प्रसन्न रहने से अहंता के रोग का (जो जन्म-मरण के चक्कर में डालता है) नाश हो जाता है और मन शुद्ध एवं निर्मल हो जाता है। सत्पुरुषों का कथन हैः—

नानक हुकमै जे बुझै त हउमै कहै न कोइ ॥

जपु जी

अर्थः—श्री गुरु नानकदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि यदि मनुष्य आज्ञा-मौज को मानकर जीवन व्यतीत करे, तो उसके हृदय में अहंता-अहंकार का चिन्ह भी शेष न रहे।

जो मनुष्य ऐसा समझता है कि जो कुछ हो रहा है, प्रभु के आदेश और उनकी मौज से हो रहा है, वही मनुष्य वस्तुतः बुद्धिमान् है और वही जीवन की प्रत्येक स्थिति में प्रसन्न रह सकता है, क्योंकि वह जीवन में आने वाली प्रत्येक परिस्थिति को प्रभु का प्रसाद समझकर झोली मे डालता है। इसके विपरीत जो अहंता-अहंकार के वशीभूत होकर यह

समझता है कि मैं ही कर्मों का करने वाला हूं, उसे महापुरुषों ने अज्ञानी कहा है:——

अहंकार विमूढात्मा कर्ताहमिति मन्यते ॥

गीता ३/२७ उ०

अर्थात् जिसका अन्त:करण अहंकार से मोहित हो रहा है, वह अज्ञानी ऐसा मानता है कि मैं ही कर्ता हूं ।

जो मनुष्य अहंता-अहंकारवश स्वयं को कर्ता मानकर यह समझता है कि मैंने ऐसा किया है और मैं ऐसा करूँगा, वह स्वयं ही अपने को चौरासी के चक्र और दु:खों के गर्त में गिराता है । सत्पुरुषों का कथन है:—

जब लगु जानै मुझ ते कछु होइ ।। तब इस कउ सुखु नाही कोइ ।।
जब इह जानै मै किछु करता ।। तब लगु गरभ जोनि महि फिरता ।।

सुखमनी

अर्थ:——"मनुष्य जब तक यह समझता है कि मुझसे कुछ हो सकता है, तब तक उसे सुख की उपलब्धि कदापि नहीं हो सकती ।"

"जब तक मनुष्य यह समझता है कि मैं अपने बल से कुछ करने की सामर्थ्य रखता हूँ, तब तक वह आवागमन के चक्र में घूमता हुआ दु:ख-कष्ट उठाता रहता है ।"

वस्तुत: जीव का यह अभिमान करना कि 'मैं भी कुछ कर सकता हूँ' व्यर्थ है । क्योंकि उस के हाथ में कुछ भी नहीं है । सब कुछ मालिक के हाथ में है और जो कुछ वह चाहता है, वही होता है । सत्पुरुषों का कथन है:–

जह जह भाणा तह तह राखे ॥

नानकु सभु किछु प्रभ कै हाथै ॥

सुखमनी

अर्थः—श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज फ़रमाते हैं कि सब कुछ परमेश्वर के हाथ में है। वह जहां-जहां चाहता है, जीवों को वहां-वहां ही रखता है।

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि मन के विचारों पर न चल कर हर समय प्रभु-इच्छा को शिरोधार्य करे और हृदय में यह दृढ़ निश्चय रखे कि जो कुछ भी हो रहा है, मालिक की मौज से ही हो रहा है। ऐसा करने से उसके पूर्वकृत कर्म कटते जायेंगे और नये कर्मों के करने का अभिमान न होने से लेखा साफ होता जायेगा।।

जो वरताए साई जुगति ॥ नानक ओहु पुरखु कहीऐ जीवन मुकति ॥ सुखमनी

वह मनुष्य जीते जी ही मुक्ति को प्राप्त करता है, जो सदैव प्रभु-इच्छा में प्रसन्न रहता है।

प्रत्येक मनुष्य के सम्मुख अनुकूल-प्रतिकूल परिस्थितियां आती ही रहती हैं। अज्ञानी जीव प्रतिकूल परिस्थितियों के आने पर रोते-चिल्लाते और अपने भाग्य को कोसते हैं, जब कि विचारवान् गुरुमुख एवं भक्तजन प्रत्येक परिस्थिति को मालिक की दात समझकर प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करते हैं। सत्पुरुषों का कथन हैः—

केतिआ दूख भूख सद मार ॥ एहि भि दाति तेरी दातार ॥ जपु जी

अनेकों को जीवन में दुःख, कष्ट एवं भूख का सामना करना पड़ता है, परन्तु जो विचारवान् हैं, हे दातार ! वे उन्हें तेरी

दात समझकर झोली में डालते हैं।

श्री गुरु अर्जुनदेव जी महाराज श्री पंचम पादशाही जी के ऊपर कितने ही कष्ट आये, परन्तु उन्होंने उन सब कष्टों को हँसते हुये सहन किया। उन के श्री मुख से सदैव यही वचन उच्चरित हुये कि–

तेरा कीआ मीठा लागै ।। हरि नामु पदारथु नानकु माँगै ।।
गुरुबाणी, आसा म० ५

हे मालिक ! मुझे तेरी प्रत्येक कार्यवाही अर्थात् तेरी प्रत्येक मौज मीठी लगती है। सत्पुरुष फरमाते हैं कि मैं तो मालिक का नाम रूपी पदार्थ ही मांगता हूँ।

भक्त जयदेव जी एक बार किसी गांव को जा रहे थे, जहां उन्हें भण्डारा करना था। भक्त जी के पास कुछ स्वर्ण-मुद्रायें थीं। मार्ग में उनकी भेंट कुछ ठगों से हो गई, जिन्होंने उनका सब धन छीन लिया। धन छीन लेने के उपरांत एक ठग ने कहा–ये हमको कहीं पकड़वा न दें, अतः उचित यही है कि इन्हें मार डाला जाये।

दूसरे ने कहा–धन तो अपने हाथ आ ही गया है, अतः मारने से क्या लाभ ?

तीसरा बोला–यदि हम इन्हें जीवित छोड़ देंगे, तो यह हमको पकड़वा देंगे।

इस प्रकार बड़ी देर तक तर्क-वितर्क करने के उपरांत उन्होंने यह निर्णय किया कि इनके हाथ-पैर काट दिये जायें। यह निश्चित करके उन ठगों ने भक्त जयदेव जी के हाथ-पैर काटकर उन्हें एक सूखे कुएं में फेंक दिया। भक्त जी इसे

प्रभु की इच्छा समझकर तनिक भी दुःखी न हुये और आनन्द-मग्न होकर प्रभु-नाम का सुमिरण करने लगे।

कुछ देर बाद एक राजा का उधर से निकलना हुआ। राजा उस समय प्यास से अत्यन्त व्याकुल था। कुआं देखकर उसने एक सैनिक से पानी लाने को कहा और स्वयं एक पेड़ की छाया में विश्राम करने लगा। जब वह सैनिक उस कुएं के निकट गया, तो जयदेव जी को इस दशा में देखकर आश्चर्यचकित रह गया। उसने राजा को जब सूचित किया, तो वह स्वयं कुएं के निकट गया। क्या देखता है कि एक व्यक्ति जिसके हाथ-पैर कटे हैं और जिनसे रक्त बह रहा है, प्रभु के नाम का सुमिरण करने में मग्न है। उसके मुखमंडल पर एक अलौकिक तेज विद्यमान है। राजा संस्कारी और भक्तिभाव वाला था, अतः वह समझ गया कि ये कोई प्रभु के प्यारे हैं और किसी निर्दयी ने इनके हाथ-पैर काटकर इन्हें कुएं में डाल दिया है। राजा ने उन्हें बाहर निकलवाया और हाथ-पैर कटने की घटना के विषय में पूछा, तो भक्त जी ने हंसते हुये उत्तर दिया—प्रभु की ऐसी ही इच्छा थी, इसमें किसी का कोई दोष नहीं है।

यह उत्तर सुनकर राजा समझ गया कि ये ऊंची कमाई वाले पुरुष हैं, अतः वह जयदेव जी को पालकी में बिठलाकर अपने महल में ले गया और उनका उपचार कराने लगा। घाव भर जाने पर एक दिन राजा जयदेव जी के चरणों में उपस्थित हुआ और विनयपूर्वक बोला—मुझे अपना सेवक जानकर जो कुछ सेवा मेरे योग्य हो, आज्ञा फ़रमायें ताकि सेवक उस सेवा को करके अपना जीवन कृतार्थ कर सके।

जयदेव जी ने कहा—प्रभु-नाम का सुमिरण करो और साधु-सन्तों का भलीभांति आदर-सत्कार और सेवा करो।

राजा उनकी आज्ञानुसार साधु-सन्तों का खूब आदर-सत्कार करने लगा। यह समाचार जब उन ठगों ने सुना कि राजा साधु-सन्तों की खूब सेवा करता और उन्हें भेंट-पूजा देता है, तो वे साधुओं का बाना पहनकर और तिलक-माला धारण करके राजा के महल में जा पहुंचे। जयदेव जी उन्हें देखकर क्रोधित होने की बजाय उलटा प्रसन्न हुये और राजा से उनका परिचय कराते हुये उन्हें अपना गुरु-भाई बतलाया और उनकी सेवा-सत्कार करने को आज्ञा फ़रमाई। राजा ने जयदेव जी की आज्ञानुसार उन्हें महलों में ठहराया और अनेक सेवक उनकी सेवा में नियुक्त कर दिये।

यद्यपि जयदेव जी के मन में उनके प्रति तनिक भी मैल नहीं थी, परन्तु वे ठग अपने पापकर्मों को स्मरण कर हर समय मन ही मन डरते रहते कि न जाने जयदेव जी के कहने पर राजा हमारे साथ क्या व्यवहार करे? अतः वे हर समय वहां से निकल भागने के लिये छटपटाने और अवसर की ताक में रहने लगे। उनकी ऐसी दशा देखकर जयदेव जी का हृदय पिघल गया और उन्होंने राजा से बहुत सा धन दिलाकर उनको आदर सहित विदा किया। राजा ने उन्हें पहुँचाने के लिये कुछ सेवक साथ भेजे।

मार्ग में राजा के सेवकों ने उनसे पूछा कि आप लोग स्वामी जी के कौन हैं, क्योंकि आपका आदर–सत्कार विशेषरूप से हुआ है।

उन ठगों ने उत्तर दिया—यह है तो भेद की बात, परन्तु फिर भी हम आपको बता देते हैं। साधु बनने से पहले हम लोग एक राजा की निजी सेवा में नियुक्त थे। वहां इन स्वामी जी ने ऐसा अनुचित कार्य किया कि राजा ने क्रोध में आकर इनको मार डालने का आदेश दिया। हम लोगों ने दया करके इनको छोड़ दिया। उसी उपकार के बदले में स्वामी जी ने हमको इतना धन दिलवाया है ताकि हम लोग उनका भेद न खोल दें।

उनके ऐसा कहते ही अचानक धरती फट गई और वे ठग उसी में समा गये। राजा के सेवकों ने लौटकर जयदेव जी तथा राजा से सब बातें कहीं। तब जयदेव जी ने उन ठगों के विषय में राजा को सब कुछ बतला दिया। जयदेव जी उनके दुख से दुःखी होकर अफ़सोस से हाथ मलने लगे। तभी सब लोग यह देखकर चकित रह गये कि उनके हाथ-पांव प्रभु-कृपा से पुनः ठीक हो गये हैं। सभी लोग यह चमत्कार देखकर जयदेव जी की जय-जयकार करने लगे।

विचारवान् गुरुमुखों भक्तों तथा आम संसारी मनमुख जीवों में यही अन्तर होता है कि गुरुमुख एवं भक्तजन जीवन में आने वाले प्रत्येक सुख-दुःख को प्रभु की इच्छा समझकर प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करते हैं, जबकि आम संसारी मनुष्य रोने-चिल्लाने में ही जीवन नष्ट कर देते हैं। संसारी मनुष्य चतुराई और सियानप दिखाते हैं और ये समझते हैं कि जैसा वे चाहेंगे वैसा हो जायेगा, परन्तु वास्तविकता यह है कि होता वही है, जो मालिक की मौज होती है, जैसा कि सत्पुरुषों का कथन है:—

जो हरि प्रभ भावै सोई होवै अवरु न करणा जाई ॥
बहुतु सिआणप लइआ न जाई करि थाके सभि चतुराई ॥
गुरुबाणी, वडहंसु म० ४

जो प्रभु को भाता है, वही होता है। उसकी मौज के विपरीत कुछ भी नहीं किया जा सकता। बहुत सिआनप और सब प्रकार की चतुराई करके भी कुछ प्राप्त नहीं किया जा सकता।

चाहे कोई कितना ही चतुर, चालाक और बलवान् हो, परन्तु मालिक के सामने तो उसकी चतुराई और चालाकी किसी काम नहीं आ सकती; मालिक के सम्मुख तो उसका बल एवं सामर्थ्य कोई महत्त्व नहीं रखते। इसलिये उचित यही है कि मनुष्य चतुराई आदि का अभिमान छोड़कर तथा मालिक के आगे अनजान एवं दीन बनकर उसकी प्रत्येक मौज को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करे। ऐसा करने से वह मालिक का प्रियपात्र बन जायेगा, उसके जीवन-पथ की सब बाधायें मालिक की कृपा से दूर हो जायेंगी और उसे सच्चे सुख-आनन्द की उपलब्धि होगी। सत्पुरुषों का कथन है:—

मन रे हुकमु मंनि सुखु होइ ॥
प्रभ भाणा अपणा भावदा जिसु बखसे तिसु बिघनु न कोइ ॥
गुरुबाणी, मलार म० ३

अर्थः— हे मन ! मालिक की आज्ञा-मौज मानने से ही सुख की प्राप्ति होती है। प्रभु को भाणा (आज्ञा) मानने वाला जीव ही प्रिय लगता है। मालिक जिसे भाणा मानने की सूझबूझ प्रदान करता है, उसे कोई विघ्न नहीं सताता।

किसी व्यक्ति के यदि दो पुत्र हों; उनमें से एक पिता की आज्ञा-मौज पर चलने वाला हो और दूसरा पिता की आज्ञा की परवाह न करके अपनी मनमरजी पर चलने वाला हो, तो स्वाभाविक ही पिता को वही पुत्र अधिक प्यारा लगता है, जो पिता की आज्ञा को शिरोधार्य करता है। भगवान् श्रीरामचन्द्र जी महाराज काकभुशुण्डि जी के प्रति फ़रमाते हैं --

॥ चौपाई ॥

एक पिता के बिपुल कुमारा। होहिं पृथक गुन सील अचारा ॥
कोउ पंडित कोउ तापस ग्याता। कोउ धनवंत सूर कोउ दाता ॥
कोउ सर्बग्य धर्मरत कोई। सब पर पितहि प्रीति सम होई॥
कोउ पितु भगत बचन मन कर्मा। सपनेहुं जान न दूसर धर्मा ॥
सो सुत प्रिय पितु प्रान समाना। जद्यपि सो सब भांति अयाना ॥

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थः--एक पिता के बहुत से पुत्र पृथक्-पृथक् गुण, स्वभाव और आचरण वाले होते हैं। कोई पंडित होता है, कोई तपस्वी, कोई ज्ञानी, कोई धनाढ्य, कोई शूरवीर, कोई दानी, कोई सर्वज्ञ और कोई धर्मपरायण होता है। पिता का प्रेम इन सभी पर समान होता है, परन्तु इनमें से यदि कोई मन, वचन और कर्म से पिता का ही भक्त होता है अर्थात् पिता की आज्ञा-मौज पर चलने वाला होता है, स्वप्न में भी दूसरा धर्म नहीं जानता, वह पुत्र पिता को प्राणों के समान प्यारा होता है, चाहे वह अनजान ही क्यों न हो।

ठीक इसी प्रकार मालिक को भी वही प्यारा लगता है

और वही मालिक की प्रसन्नता प्राप्त करता है, जो मालिक की आज्ञा को मानने वाला तथा मौज को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य करने वाला होता है। वास्तविकता की दृष्टि से देखा जाये, तो ऐसा मनुष्य ही चतुर और सयाना है। सत्पुरुषों का कथन है:—

सोई करणा जि आपि कराए ।। जिथै रखै सा भली जाए, ।।
सोई सिआणा सो पतिवंता हुकमु लगै जिसु मीठा जीउ ।।

गुरुबाणी, माझ म० ५

अर्थः—मनुष्य को वही कार्य करना चाहिये, जो वह आप कराये अर्थात् जो मालिक की मौज हो। जीव के लिये वही स्थान भला (उत्तम) है, जहां मालिक रखे। वास्तव में वही मनुष्य सयाना एवं मान-सम्मान वाला है, जिसे मालिक की मौज मीठी (प्रिय) लगती है।

इसलिये जो विचारवान् हैं, वे मालिक की प्रत्येक मौज को शिरोधार्य करते हैं; परिणामस्वरूप इहलौकिक जीवन भी सुख एवं आनन्दपूर्वक बिताते हैं और परलोक में भी सम्मान प्राप्त करते हैं।

एक बार राय बुलार ने सत्पुरुष श्री गुरुनानकदेव जी महाराज के श्री चरणों में विनय की—सच्चे पादशाह ! हमें कुछ फ़रमाइश कीजिये ताकि हमारा जन्म सफल हो। तब श्री गुरु नानकदेव जी महाराज ने फ़रमायाः—

इक फुरमाइश आखीऐ जे मंनै साई ।।
जिसते जोर न चलई करि जोर धिआई ।।

जन्मसाखी भाई बाले वाली

फ़रमाया कि एक फ़रमाइश तुमसे कहते हैं कि जिस सर्व-

समर्थ प्रभु के सम्मुख मनुष्य का ज़ोर नहीं चलता, हाथ जोड़कर उसका सुमिरण-भजन करते रहो।

यही एक मार्ग है सच्चा सुख-आनन्द प्राप्त करने का कि प्रभु की मौज को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य कर जीवन व्यतीत करो। जो सौभाग्यशाली इस मार्ग पर पग बढ़ाता है, वह सुख, आनन्द और शान्ति की ओर बढ़ता जाता है। ऐसे मनुष्य को जीवन में कभी पछताना अथवा रोना नहीं पड़ता, जैसा कि फ़रमान है:—

जिन्ही पछाता हुकमु तिन्ह कदे न रोवणा ॥

गुरुवाणी

जो मालिक की आज्ञा-मौज को शिरोधार्य करते हैं, वे सदैव आनन्द-मग्न रहते हैं, क्योंकि ऐसे गुरुमुखों की प्रभु स्वयं रक्षा एवं सहायता करते हैं। इतिहास में ऐसे अनेकों प्रमाण भरे पड़े हैं। उदाहरणार्थ, अनेक लोगों ने, जो परमसन्त श्री कबीर साहिब जी के विरोधी थे, कई बार ऐसी योजना बनाई जिससे उनका अपयश हो, परन्तु वे तो मालिक की मौज को शिरोधार्य कर प्रत्येक परिस्थिति में प्रसन्न रहने वाले थे, परिणाम यह हुआ कि उनका यश पहले से भी अधिक फैल गया।

एक बार श्री सद्गुरुदेव महाराज जी श्री द्वितीय पादशाही जी के श्री चरणों में एक महात्मा जी ने विनय की—— महाराज जी! आसपास के बहुत से लोग श्री दरबार की निंदा करते हैं।

श्री सद्गुरुदेव महाराज जी ने फ़रमाया——जैसे तुम लोग

दरबार की महिमा करके उसका यश फैलाते हो, वैसे ही निंदक लोग भी दरबार की ख्याति बढ़ाते हैं। तुम लोग कहोगे कि वह कैसे ? वह ऐसे कि दरबार की निंदा सुनकर अनेक लोगों के मन में दरबार के विषय में जानने की जिज्ञासा उत्पन्न हो जाती है। इस जिज्ञासा को लेकर जब वे यहां आते हैं, तो यहां की सच्ची कार्यवाही देखकर वे भी दरबार के सेवक बन जाते हैं। यह जो कुछ भी हो रहा है, मालिक की मौज से ही हो रहा है। मालिक की प्रत्येक मौज में कुछ न कुछ भेद छिपा होता है, अतः उसकी प्रत्येक मौज को प्रसन्नतापूर्वक मान लेना ही बुद्धिमानी है।

किन्तु मालिक की मौज को एक विचारवान् गुरुमुख ही प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य कर सकता है, जैसा कि कथन है:—

साच पदारथु गुरमुखि लहहु ।।
प्रभ का भाणा सति करि सहहु ।।

गुरुबाणी, भैरउ म० ५

अर्थः—प्रभु—नाम का सच्चा पदार्थ सद्गुरु के द्वारा उपलब्ध होता है और तभी जीव प्रभु के भाणे (मौज) को सत्य-सत्य करके मानता और शिरोधार्य करता है।

इसलिये यदि जीवन में सच्चा सुख, आनन्द एवं शान्ति चाहते हो, तो प्रभु-इच्छा को प्रसन्नतापूर्वक शिरोधार्य कर वाह-वाह करते हुए जीवन व्यतीत करना सीखो। सुख-पूर्वक जीवन व्यतीत करने का यही एकमात्र मार्ग है।

दरबार–महिमा

स्वर:—बस्ती-बस्ती पर्वत-पर्वत... ॥

टेक:--इस दुनिया में सबसे ऊंचा, यह दरबार तुम्हारा है,
त्रिलोकी से न्यारा है।

१. जीवों के उद्धार हेतु, तूने दरबार बनाया है,
सच्ची प्रेमाभक्ति का अमृत, जन जन को पिलाया है,
जग जीवों पर ऐ मेरे स्वामी, किया उपकार यह भारा है,
जाने यह जग सारा है।

२. श्री दरबार में नाम-भक्ति की, गंगा यमुना बहती हैं,
इस नगरी के कण-कण में सदा, खुशियां ही खुशियां रहती हैं,
ग़म-चिंता का नाम नहीं, सुख-शान्ति की बहती धारा है,
लगता सबको प्यारा है।

३. उनकी किस्मत का क्या कहना, जिनको यह दरबार मिला,
महाघोर कलियुग में सच्ची, खुशियों का भंडार मिला,
धन-धन भाग मनाते हैं सब, मिला जो तेरा द्वारा है,
हिरदे हुआ उजारा है।

४. यही तमन्ना है बस दिल में, अटल रहे दरबार तेरा,
'दासनदास' कहाऊँ सदा मैं, मिलता रहे प्यार तेरा,
युग युग में तेरे दर पर आऊँ, जो मुझे प्राणों से प्यारा है,
जीवन का सहारा है।

सदुपदेश

सन्तों के वचन हैं--

अजहूं चेतै नाहीं आव घटंती जाय ।
ज्यों तरु छाया तेरी काया देखत ही घटि जाय ।।
ऐसो दाव बहुरि नहिं लागै पीछे ही पछिताय ।
जैमलदास काच करि कानै ततही लेणा ताय ।।

सन्त जैमलदास जी

अर्थ:--ऐ मनुष्य ! तेरी आयु निरन्तर घटती जा रही है, परन्तु तू फिर भी सावधान होने का नाम नहीं लेता । तेरी यह काया तरुवर की छाया की तरह देखते ही देखते समाप्त हो जायेगी । तुझे जो यह मनुष्य-जन्म का स्वर्णावसर प्राप्त हुआ है, यह तेरे हाथ दावँ लग गया है, क्योंकि ऐसा अवसर बार-बार नहीं मिलता । यदि इस अवसर में मालिक की प्राप्ति करके पूरा-पूरा लाभ न उठाया और इसे यूंही गंवा दिया, तो बाद में पछतावा ही पल्ले पड़ेगा । सन्त जैमलदास जी फ़रमाते हैं कि काँच को यदि मोड़ना हो, तो यह कार्य उसी समय हो सकता है, जबकि वह गर्म हो; ठंडा हो जाने पर कुछ भी नहीं हो सकता ।

यदि किसी को कांच मोड़ना हो, तो यह कार्य उसी समय हो सकता है जबकि कांच गर्म हो; कांच के ठंडा हो जाने पर यह कार्य नहीं हो सकता । इसी प्रकार ही संसार में

प्रत्येक कार्य के करने का एक समय होता है। जब वह अवसर हाथ लगे, उस कार्य को तुरन्त कर लेना चाहिये; इसी में बुद्धिमानी है। यदि उचित अवसर पर वह कार्य न किया जाये और उस समय को अन्य कार्यों में व्यतीत कर दिया जाये, तो बाद में पश्चात्ताप के अतिरिक्त कुछ भी हाथ-पल्ले नहीं पड़ता। उदाहरणार्थ, पढ़ाई-लिखाई को ही लीजिये। इस कार्य को करने का भी जीवन में एक विशेष समय होता है और वह है—बाल्यकाल से लेकर यौवनावस्था तक। यदि मनुष्य उस समय का पूरा-पूरा उपयोग करते हुये ठीक प्रकार से विद्या ग्रहण कर लेता है, तब तो वह सांसारिक दृष्टिकोण से लाभ मे रहता है, क्योंकि पढ़-लिखकर वह किसी उच्च पद पर नियुक्त हो जाता है, परन्तु यदि वह इस समय को यूंही खेलकूद अथवा आलस्य में गंवा देता है, तो फिर बाद में अवसर चूक जाने पर उसे पछताना ही पड़ता है। इसलिये बुद्धिमान् मनुष्य वही है, जो हाथ में आये हुये अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाता है और उस समय में अपना काम बना लेता है।

ठीक इसी प्रकार मानव जन्म का यह स्वर्णिम अवसर भी जीवात्मा को केवल इस प्रयोजन के लिये प्राप्त हुआ है ताकि वह इसमें परमात्मा की भजन-भक्ति करके उसकी प्राप्ति कर सके। जीवात्मा, जो अपने अंशी परमपिता परमात्मा से बिछुड़कर अनन्त जन्मों से मनुष्येतर योनियों में भरमता और भटकता हुआ नाना प्रकार के दुःख, कष्ट एवं यातनायें भोगता चला आ रहा है, उस जन्म-मरण के चक्र, काल के बन्धन तथा दुःखों-कष्टों से छुटकारा प्राप्त करने के

लिये ही उसे यह मानव जीवन प्राप्त हुआ है। मनुष्य-जीवन का यह अवसर विशेषत: इसी उद्देश्य की पूर्ति के लिये जीव-आत्मा को प्राप्त हुआ है ताकि इसमें वह उचित साधन अपना कर अपने अंगी परमात्मा की प्राप्ति करने का यत्न करे। इस प्रकार देखा जाय तो मनुष्य-जन्म के रूप में जीव के हाथ दावँ लग गया है। अब वह चाहे तो इसमें वास्तविक कार्य—अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति करके जीवन की बाज़ी जीत ले अथवा इस दुर्लभ अवसर को मात्र अन्य सांसारिक कार्यों—धन-सम्पत्ति संचित करने, शारीरिक सुख-सुविधा के सामान जुटाने तथा ऐन्द्रिक भोगों की पूर्ति में नष्ट करके और जीवन की बाज़ी हारकर फिर से चौरासी का चक्र खरीद कर ले। शास्त्रकारों का कथन है कि:—

इह चेदवेदीदथ सत्यमस्ति न चेदिहावेदीन्महती विनष्टि:।

केनोपनिषद् २/५ पू०

यदि मनुष्य ने उचित साधन करके इस जीवन में परमात्मा की प्राप्ति कर ली, तब तो ठीक है, क्योंकि उसने इस अवसर से पूरा-पूरा लाभ उठाया और यदि उसने इस जीवन में यह कार्य न किया, तो बहुत बड़ी हानि है, क्योंकि फिर उसे दीर्घ विनाश की अर्थात् जन्म-जन्मान्तर तक जन्म, जरा तथा मरण आदि की प्राप्ति होती है।

एक अन्य स्थान पर भी कथन है:—

इह चेदशकद्बोद्धुं प्राक्शरीरस्य विस्रस:।
तत: सर्गेषु लोकेषु शरीरत्वाय कल्पते॥

कठोपनिषद् २/३/४

यदि इस शरीर के पतन के पूर्व अर्थात् इस मानव काया में ही मनुष्य परमात्मा की प्राप्ति करने में सफल हो गया, तो वह संसार-बन्धन से मुक्त हो जाता है और यदि इस काया में प्रभु को प्राप्ति करने का यत्न न किया, तो चौरासी के चक्र में फंस कर बार-बार जन्म लेता है।

अभिप्राय यह कि मनुष्य-जन्म का यह दुर्लभ अवसर मात्र प्रभु-प्राप्ति के लिये ही जीव को मिला है, अतः इस वास्तविक कार्य को न करके इसे अन्य सांसारिक कार्यों में बिता देना कदापि उचित नहीं। यदि हाथ में आया हुआ यह दुर्लभ अवसर यूंही व्यर्थ चला गया, तो पुनः चौरासी के चक्र में जाना और जन्म-मरण के दुःखों का सामना करना पड़ेगा। सत्पुरुषों का कथन है:—

लख चउरासीह जोनि सबाई ।। माणस कउ प्रभि दीई वडिआई ।। इसु पउड़ी ते जो नरु चूकै सो आइ जाइ दुखु पाइदा ।। गुरुबाणी, मारू म० ५

मनुष्य-जन्म की श्रेष्ठता का वर्णन करते हुये महापुरुष फ़रमाते हैं कि सृष्टि में जो चौरासी लाख योनियां हैं, उन सबमें से मनुष्य को महानता प्रदान की गई है अर्थात् उसे सब योनियों में उच्च कोटि का बनाया गया और उसे विशेष दर्जा दिया गया है। जो मनुष्य इस अवसर रूपी सीढ़ी से चूक जाता है, वह आवागमन के चक्र में फंसकर दुःख-कष्ट पाता है।

मानव जन्म को सीढ़ी इसलिये कहा गया है, क्योंकि यह जन्म परमेश्वर की भजन-भक्ति करके प्रभु के धाम में पहुँचने

की सीढ़ी है। यह एक विशेष अवसर जीव को प्रदान किया गया है ताकि वह इस समय में जन्म-जन्मान्तर की बिछुड़ी हुई आत्मा को परमात्मा के संग मिलाने का प्रयत्न एवं पुरुषार्थ करे। मनुष्य की महानता एवं बड़ाई तभी है, जब वह इस अवसर का पूरा-पूरा लाभ उठाये और अपना काम बना ले। यदि असावधानी और आलस्य में यह दुर्लभ अवसर यूंही हाथ से निकल गया, तो फिर सिवा पश्चात्ताप के और कुछ भी हाथ-पल्ले न पड़ेगा। भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज पुरवासियों को उपदेश करते हुये फ़रमाते हैं:—

॥ चौपाई ॥

बड़े भाग मानुष तनु पावा। सुर दुर्लभ सब ग्रंथन्हि गावा ॥
साधन धाम मोच्छ कर द्वारा। पाइ न जेहि परलोक संवारा ॥

॥ दोहा ॥

सो परत्र दुख पावइ, सिर धुनि धुनि पछिताइ।
कालहि कर्महि ईस्वरहि, मिथ्या दोष लगाइ ॥

श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थ:—अत्यन्त सौभाग्य से यह मनुष्य-शरीर प्राप्त हुआ है। सभी ग्रन्थ-शास्त्र इसकी बड़ाई करते हुये कहते हैं कि यह उत्तम चोला देवताओं को भी दुर्लभ है। यह साधनों का घर और मोक्ष का द्वार है। ऐसा उत्तम शरीर पा कर भी जो अपना परलोक नहीं संवारता, वह समय के बीत जाने पर दुःख पाता और सिर पीट-पीट कर पछताता है तथा अपना दोष न मानकर काल पर, कर्म पर और ईश्वर पर मिथ्या दोष लगाता है अर्थात् समय न मिलने, भाग्य के

साथ न देने और ईश्वर की कृपा न होने की मिथ्या बातें करता है ।

यदि संसार की ओर दृष्टिपात किया जाये, तो देखने में यही आता है कि आम संसारी जीव मानव-जीवन के वास्तविक उद्देश्य से पूर्णतः अनभिज्ञ हैं । उन्हें इस बात का ज्ञान ही नहीं कि यह मानव काया उन्हें किस लिये प्राप्त हुई है ? वे तो यही समझते हैं कि माया तथा मायिक पदार्थ एकत्र करने और शारीरिक एवं ऐन्द्रिक सुख भोगने के लिये ही वे संसार में आये हैं ।

सन्त सत्पुरुष जीवों को प्रमाद-निद्रा से जगाते और कर्त्तव्य-बोध कराते हुये उपदेश करते हैं कि ऐ जीव ! तुझे यह देव-दुर्लभ श्रेष्ठ मानव काया बड़े पुण्य प्रताप से प्राप्त हुई है, अतएव इसका मूल्य एवं महत्त्व समझ और इसमें परमात्मा की भजन-भक्ति और सुमिरण-ध्यान करके परमात्म-प्राप्ति कर ले, क्योंकि यह श्रेष्ठ मानव जीवन शरीर-इन्द्रियों के तुष्टिकरण के लिये नहीं, प्रत्युत भजन-भक्ति के लिये मिला है । श्रीमद्भागवत में वर्णन है कि:--

स वै पुंसां परो धर्मो यतो भक्तिरधोक्षजे ।
अहैतुक्यप्रतिहता ययाऽऽत्मा सम्प्रसीदति ॥

१/२/६

मनुष्यों के लिये सर्वश्रेष्ठ कर्त्तव्य वही है, जिससे उसकी भगवान् के चरणों में भक्ति हो, भक्ति भी ऐसी जिसमें किसी प्रकार की कामना न हो और जो नित्य-निरन्तर बनी

रहे। ऐसी भक्ति से हृदय आनन्दस्वरूप परमात्मा की प्राप्ति करके कृतकृत्य हो जाता है।

उपरोक्त कथन से सिद्ध हो जाता है कि मनुष्य-जीवन का वास्तविक कर्त्तव्य एवं ध्येय भगवान् की भजन-भक्ति करना ही है। किन्तु यह बात सदैव स्मरण रहे कि समय के सन्त सद्गुरु के पथ-प्रदर्शन के बिना भक्ति-मार्ग पर आगे बढ़ना कठिन ही नहीं, प्रत्युत असम्भव है। बिना सद्गुरु की सहायता एवं कृपा के मनुष्य चाहे सहस्रों वर्षों तक जप-तप आदि क्यों न करता रहे, तो भी वह अपने लक्ष्य पर पहुँचने में सफल नहीं हो सकता, जैसा कि सत्पुरुषों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

केतिक पढ़ि गुनि पचि मुवा, जोग जज्ञ तप लाय।
बिन सतगुरु पावै नहीं, कोटिन करै उपाय॥

परमसन्त श्री कबीर साहिब

चाहे कोई कितनी ही पुस्तकें पढ़ ले अथवा योग, जप, तप आदि उपाय कर ले, परन्तु यह निश्चित तथ्य है कि सन्त सद्गुरु के मार्गदर्शन तथा उनकी सहायता के बिना मनुष्य भक्ति-पथ पर सफलता प्राप्त नहीं कर सकता, क्योंकि यह मार्ग अति दुर्गम है। इसमें पग-पग पर काल, माया तथा उसके बलशाली साथी (काम, क्रोध, लोभ, मोह, अहंकारादि) जीव को पथभ्रष्ट करने के लिये घात लगाये बैठे रहते हैं। जीव में इतनी शक्ति नहीं कि अकेले ऐसे शक्तिशाली शत्रुओं से लोहा ले सके। इसलिये भक्ति-पथ की

दुर्गम घाटियों को पार करने और इन शत्रुओं की घातों से बचने के लिये उसे किसी शक्तिशाली सहायक की आवश्यकता है। जीव के ऐसे सच्चे सहायक हैं—समय के पूर्ण सन्त सद्गुरु। जीव उनके पावन चरणों की छत्रच्छाया में आ जाये, फिर इन शत्रुओं की शक्ति नहीं कि जीव को पथभ्रष्ट कर सकें अथवा उस के मार्ग में बाधा डाल सकें। परिणाम-स्वरूप जीव निर्बाधगति से भक्ति-पथ पर अग्रसर होता हुआ एक दिन अपने लक्ष्य की प्राप्ति करने में सफल हो जाता है। सभी सद्शास्त्र एवं सन्तजन जीव को इसीलिये सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण करने का आदेश देते हैं, जैसा कि कथन है:—

उत्तिष्ठत जाग्रत प्राप्य वरान्निबोधत ।
क्षुरस्य धारा निशिता दुरत्यया
दुर्गं पथस्तत्कवयो वदन्ति ॥
कठोपनिषद् १/३/१४

उठो ! अज्ञान-निद्रा से जागो और श्रेष्ठ पुरुष सन्त सद्गुरु की चरण-शरण में जाकर ज्ञान की प्राप्ति करो, क्योंकि जिस प्रकार छुरे की धार तीक्ष्ण और दुस्तर होती है, तत्त्वज्ञानी लोग भक्तिमार्ग को भी वैसा ही दुर्गम बताते हैं।

इसलिये मनुष्य यदि संसार-सागर से पार होना तथा जन्म-मरण के कष्टों से मुक्ति प्राप्त करना चाहता है, तो उसे चाहिये कि समय के सन्त सद्गुरु की चरण-शरण ग्रहण कर उनकी श्री आज्ञानुसार जीवन-यात्रा तय करे।

ऐसा करने से वह सहज ही भवसागर के पार हो जायेगा। भगवान् श्री कृष्ण चन्द्र जी महाराज भक्त उद्धव जी के प्रति फ़रमाते हैं कि:—

नृदेहमाद्यं सुलभं सुदुर्लभं
प्लवं सुकल्पं गुरु कर्णधारम् ।
मयानुकूलेन नभस्वतेरितं
पुमान् भवाब्धि न तरेत् स आत्महा ।।

श्रीमद्भागवत् ११/२०/१७

अर्थः—यह मनुष्य-शरीर समस्त शुभ फलों की प्राप्ति का मूल है और अत्यन्त दुलभ होने पर भी ईश्वर की कृपा से सुलभ हो गया है। इस संसार-सागर से पार जाने के लिये यह एक सुदृढ़ नौका है। शरण ग्रहण मात्र से ही कृपामय सन्त सद्गुरुदेव इसके कर्णधार (केवट) बनकर पतवार का संचालन अपने हाथ में ले लेते हैं और मैं स्मरणमात्र से ही अनुकूल वायु के रूप में ऐसे मनुष्य को लक्ष्य की ओर बढ़ाने लगता हूं। इतनी सुविधा होने पर भी जो इस शरीर द्वारा संसार-सागर से पार नहीं हो जाता, वह आत्मघाती है, क्योकि वह अपने हाथों ही अपनी आत्मा का हनन करता है।

ऐसे ही वचन भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज ने भी नगरवासियों के प्रति उपदेश करते हुये फ़रमाये हैं:—

।। चौपाई ।।

नर तनु भव बारिधि कहुं बेरो। सन्मुख मरुत अनुग्रह मेरो।।
करनधार सदगुर दृढ़ नावा। दुर्लभ साज सुलभ करि पावा।।

॥ दोहा ॥

जो न तरै भवसागर, नर समाज अस पाइ ।
सो कृत निंदक मदमति, आत्माहन गति जाइ ॥
श्रीरामचरितमानस, उत्तरकाण्ड

अर्थः—यह मनुष्य-शरीर भव सागर से तरने के लिये बेड़ा है, मेरी कृपा अनुकूल वायु है और सद्गुरु इस दृढ़ बेड़े के कर्णधार हैं। इस प्रकार दुर्लभ साधन सुलभ होकर जीव को प्राप्त हो गये हैं। जो मनुष्य एसे साधन पाकर भी भवसागर से न तरे, वह कृतघ्न और मन्द बुद्धि है और आत्महत्या करने वाले की गति को प्राप्त होता है।

और आत्मघाती व्यक्ति किस गति को प्राप्त करते हैं, इस विषय में यजुर्वेद में वर्णन है किः—

असुर्य्या नाम ते लोका अन्धेन तमसावृताः ।
तांस्ते प्रेत्यापि गच्छन्ति ये के चात्महनो जनाः ॥
४०/३

जो पुरुष आत्मघाती हैं अर्थात् आत्मा का हनन करते हैं, वे मरने के उपरांत घोर अंधकारमय लोकों में (नरकों और नीच योनियों में) जाते हैं।

यह कोई अच्छी स्थिति तो नहीं कि जीवात्मा जिस चौरासी के चक्र और नीच योनियों की दारुण यातनाओं से अत्यन्त कठिनाई से छूटकर मनुष्य-जन्म में आया था, उसी में फिर जा गिरे ! नहीं, ऐसा कदापि नहीं होना चाहिये।

मनुष्य-जन्म का यह दुर्लभ अवसर प्राप्त करके जीव का यह कर्त्तव्य हो जाता है कि वह इस जीवन का मूल्य एवं महत्त्व समझे और इसमें सद्‌गुरु की आज्ञा-मौज अनुसार भजन-भक्ति का वास्तविक कार्य करके जीवन के लक्ष्य अर्थात् परमात्मा की प्राप्ति करके जीवन सफल करे।

कविता

१साया-ए-रहमत तेरा जिसको भी हासिल हो गया।
२दायमी राहत से पुर उस बशर का दिल हो गया।।
काम दोनों ही जहां के जाते हैं उसके संवर।
जो भी सतगुरु तेरे दरे-दौलत का ३सायल हो गया।।
करता है दिल में तेरा हर घड़ी दीदार वह।
४पाक और शफ़ाफ़ जिसका ५आइना-ए-दिल हो गया।।
तेरी ख़िदमत में जो रहता रातदिन मसरूफ़ है।
कामयाब उस बशर की ज़िन्दगी का हर पल हो गया।।
करता है तेरे हवाले ६कश्ती-ए-हयात जो।
बच के भंवरों से ७सफ़ीना ८कुरबे-साहिल हो गया।।
है तेरा ९लुत्फ़-ो-करम यह मुझसे गुनहगार पर।
छोड़ जग को १०मारफ़त की तरफ़ ११मायल हो गया।।
बख़्शिशों का तेरी १२अज़हद 'दास' यह १३मशकूर है।
ख़ूबसूरत १४ज़ेरे-साया आके १५मुस्तकबिल हो गया।।

---

१. कृपापूर्ण आश्रय २. शाश्वत सुख ३. भिक्षुक ४. पवित्र एवं निर्मल ५. हृदय-दर्पण ६. जीवन-नैया ७. नैया ८. किनारे के निकट ९ कृपा-दया १०. परमार्थ ११. आकृष्ट १२. अत्यधिक १३. आभारी १४. छत्रच्छाया में १५. भविष्य।

वास्तविक कर्त्तव्य

संसार में चौरासी लाख प्रकार के जितने भी चर-अचर जीव हैं, उनको पैदा करने के साथ-साथ परमपिता परमात्मा उनकी आजीविका अथवा पालन-पोषण का प्रबन्ध भी कर देता है। सबको उनके प्रारब्धानुसार रोज़ी देने वाला और उनका पालयिता वह स्वयं है और उसे सब की आजीविका की चिंता है। चाहे जल मे रहने वाले जीव हों, चाहे पत्थरों में रहने वाले—परमात्मा सबके पालन-पोषण का ध्यान रखता है। उसकी ओर से सृष्टि उत्पन्न करने का कार्य ब्रह्मा जी के, संहार का कार्य शंकर जी के और पालन-पोषण का कार्य विष्णु जी के सुपुर्द है।

कथा है—एक बार लक्ष्मी जी ने भगवान् विष्णु के चरणों में विनय की—भगवन् ! आप कहते हैं कि आप सबका पालन-पोषण करने वाले हैं और उनकी आजीविका का सदैव ध्यान रखते हैं, तो क्या आज आप सबको भोजन पहुँचा चुके हैं।

भगवान् विष्णु ने मुस्कराते हुये उत्तर दिया--हां लक्ष्मी ! हमारे विचार में सबको भोजन पहुँच चुका है।

लक्ष्मी जी ने कहा--भगवन् ! आप भलीभांति सोच-विचार कर लें, शायद किसी जीव को भोजन न पहुँचा हो।

वास्तव में बात यह थी कि लक्ष्मी जी ने एक कीड़े को

डिब्बी में बन्द करके और उस डिब्बी को रूमाल में लपेट कर ट्रंक में रख दिया था। वे यह देखना चाहती थीं कि इस कीड़े को भगवान् उसका भोजन किस प्रकार पहुंचाते हैं।

लक्ष्मी जी की बात सुनकर भगवान् विष्णु ने उत्तर दिया—हमारे विचार में सबको भोजन पहुंच चुका है; ऐसा कोई प्राणी शेष नहीं, जिसे प्रारब्धानुसार उसका आहार न पहुंचा हो।

भगवान् विष्णु के इतना कहने पर लक्ष्मी जी तुरन्त गईं और ट्रंक में से वह डिब्बी निकालकर ले आईं, जिसके अन्दर वह कीड़ा बन्द था। उन्होंने भगवान् के समक्ष ज्यों ही डिब्बी खोली, तो यह देखकर अवाक् रह गईं कि डिब्बी में एक चावल का दाना पड़ा हुआ है, जिसे खाने में कीड़ा व्यस्त है। सोचने लगीं कि जब मैंने डिब्बी में कीड़े को बन्द किया था, तब तो यह डिब्बी खाली थी, फिर यह चावल का दाना कहां से आ गया ?

हुआ यह कि लक्ष्मी जी ने माथे पर जो केसर और चावलों का तिलक लगा रखा था, डिब्बी को बन्द करते समय उसमें से एक दाना डिब्बी में गिर गया, जिसे लक्ष्मी जी न देख सकीं।

यह देखकर लक्ष्मी जी ने भगवान् से क्षमायाचना करते हुये कहा—भगवन् ! आप वास्तव में ही समस्त जीवों के आहार का ध्यान रखते हैं।

कथा का अभिप्राय यह कि सृष्टि में जितने भी जीव प्राणी हैं, सबका पालन-पोषण करने वाला और उनकी आजीविका का ध्यान रखने वाला मालिक स्वयं है, इसलिये हर समय रोज़ी-रोटी की चिंता में पड़े रहकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य--परमात्मा की भजन-भक्ति को भूल जाना कदापि उचित नहीं। जिस परमात्मा ने पैदा किया है, वह सबका पालयिता जन्म से पहले ही जीव की आजीविका का प्रबन्ध कर देता है, जैसा कि सन्तों का कथन है:—

॥ शेअर ॥

ग़मे–रोज़ी मख़ुर बरहम मज़न औराक़े दफ़्तर रा।
कि पेश अज़ तिफ़्ल एज़द पुर कुनद पिस्ताने--मादर रा॥

शेख़ सादी साहिब

ऐ मनुष्य ! तू अपनी आजीविका की चिन्ता मत कर, न ही इसके लिये भाग्य के कार्यालय के पन्नों को उलट-पलट कर परेशान हो, क्योंकि इसकी चिन्ता स्वयं परमात्मा को है। प्रमाण के रूप में देख कि बच्चे के जन्म लेने से पूर्व ही परमात्मा बच्चे के लिये माता के स्तनों को दूध से भर देता है।

मनुष्य मन में विचार करे कि परमात्मा जबकि जन्म लेने से पूर्व ही मनुष्य के आहार का प्रबन्ध कर देता है, तो क्या उसके बड़ा होने पर उसकी आजीविका का ध्यान न रखेगा ? अवश्य रखेगा। किन्तु आम संसारी मनुष्य इस बात पर विश्वास न करके हर समय आजीविका की चिन्ता

में अधीर और परेशान बने रहते हैं। सन्तों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

प्रारब्ध पहले बना, पाछै बन्यो शरीर ।
तुलसी यह आश्चरज है, मन नहिं बांधे धीर ॥

सन्त तुलसीदास जी

अर्थ:—सन्त तुलसीदास जी फ़रमाते हैं कि जीव का शरीर तो बाद में बनता है अर्थात् उसका जन्म तो बाद में होता है जबकि उसका प्रारब्ध परमात्मा पहले से ही तैयार कर देता है, परन्तु फिर भी यह कितने आश्चर्य का विषय है कि मनुष्य का मन इस बात पर विश्वास न करके हर समय आजीविका के लिये अधीर बना रहता है।

गुरुबाणी में भी फ़रमान है:–

भभै भूरि मरहु किआ प्राणी जो किछु देणा सु दे रहिआ ॥
दे दे वेखै हुकमु चलाए जिउ जीआ का रिजकु पइआ ॥

आसा म० १

अर्थ:–हे प्राणी ! रोज़ी के लिये चिन्ता करके तू क्यों परेशान होता रहता है ? जो कुछ परमात्मा ने तुझे देना है, वह आप ही दे रहा है। जैसा-जैसा जीवों का आहार निश्चित है, वह अपने हुकुम से सबको दे रहा है तथा देखभाल भी आप ही कर रहा है।

आम संसारी मनुष्य अज्ञानवश आजीविका की चिंता में पड़कर व्यर्थ ही स्वयं को दुःखी और परेशान किये रहता है। उसे हर समय यही चिंता सताती रहती है कि यदि वह

आजीविका का प्रबन्ध न करे, तो शायद वह, उसका परिवार तथा आश्रितजन—सभी भूखे मर जायें। किन्तु सत्पुरुषों का कथन है कि वह मनुष्य की भूल एवं अज्ञानता है।

छत्रपति शिवा जी के समय की घटना है। वे एक पहाड़ी के ऊपर किला बनवा रहे थे, जिसके निर्माण में सैंकड़ों व्यक्ति लगे हुये थे। एक दिन शिवा जी किले का निरीक्षण कर रहे थे। इतने व्यक्तियों को काम में लगे देखकर उनके मन में यह विचार उत्पन्न हुआ कि मेरे किला बनवाने से कितने लोगो की रोज़ी-रोटी का प्रबन्ध हो रहा है। यदि मैं यह किला न बनवाता, तो पता नहीं इनका गुज़ारा कैसे चलता ?

शिवाजी के गुरुदेव समर्थ स्वामी गुरु रामदास जी समय के पूर्ण महापुरुष थे। महापुरुष तो त्रिकालदर्शी और घट-घट की जानने वाले होते हैं, फिर भला शिवाजी के मन की बात उनसे कहां छिपी रह सकती थी ? शिवा जी के मन से इस भ्रम को दूर करने के लिये वे तुरन्त किले की ओर चल दिये। वे जैसे ही किले के निकट पहुँचे, एक सैनिक ने तत्काल शिवाजी को उनके आने की सूचना दी। गुरुदेव के आगमन का समाचार पाकर शिवा जी किले के नीचे उतर आये और गुरुदेव के चरणों में प्रणाम कर हाथ जोड़कर खड़े हो गये। समर्थ स्वामी गुरु रामदास जी ने एक बड़े पत्थर की ओर संकेत करते हुये फ़रमाया—शिवा ! इस पत्थर को बीच से तुड़वाओ।

शिवा जी ने तुरन्त मिस्त्रियों को पत्थर तोड़ने का आदेश दिया। पत्थर के टूटने पर सब यह देखकर आश्चर्यचकित रह गये कि वह पत्थर बीच में से पोला है, जिसमें पानी

भरा है और एक मेंढक उसमें बैठा हुआ है। श्री गुरुदेव ने शिवाजी को सम्बोधित करते हुये फ़रमाया–शिवा ! इस मेंढक को खाना-पीना कौन दे रहा है ?

गुरुदेव के ये वचन सुनते ही शिवाजी चौंक उठे और उन्हें अपने मन में उत्पन्न वह विचार स्मरण हो आया कि "मेरे किला बनवाने से कितने लोगों की रोज़ी-रोटी का प्रबन्ध हो गया।" उन्हें अपनी भूल का अनुभव हुआ, अतः उन्होंने गुरुदेव के चरणों में गिर कर क्षमा मांगी।

श्री गुरुदेव ने फ़रमाया--ऐसा विचार पुनः कभी भी मन में न लाना। सबको रोज़ी-रोटी देने वाला परमात्मा है। जबकि वह पत्थरों में रहने वाले जीवों का भी ध्यान रखता है, तो क्या जो किले के निर्माण में कार्यरत हैं, उनका ध्यान वह न रखेगा ?

शिवा जी ने अपनी भूल के लिये पुनः क्षमायाचना की।

इसी विषय में गुरुबाणी में फ़रमान है--

सैल पथर महि जँत उपाए ता का रिजकु आगै करि धरिआ ॥

कहने का अभिप्राय यह कि सबकी आजीविका तथा पालन-पोषण का दायित्व मालिक का है और वही सबको रोज़ी-रोटी देता है। इसलिये इस विषय में मनुष्य को अधिक चिंता करने की आवश्यकता नहीं है। इसका अर्थ कोई यह न समझ ले कि धनोपार्जन करने अथवा कामकाज करने से मना किया जा रहा है तथा आलसी एवं निकम्मा बन जाने की ओर कामकाज से जी चुराने की शिक्षा दी जा रही है। नहीं, ऐसा

कदापि नहीं है। पुरुषार्थ करने तथा सांसारिक कर्त्तव्यकर्मों से जी चुराने की शिक्षा सन्त सत्पुरुष कभी नहीं देते, परन्तु हर समय आजीविका की चिंता मे गलतान रहकर जीवन के वास्तविक उद्देश्य को भूल जाना—यह कदापि उचित नहीं।

मन में ज़रा विचार करो कि परम पिता परमात्मा जबकि सृष्टि के अनन्त जीवों का पालन-पोषण कर रहा है, तो क्या वह तुम्हारी संभाल न करेगा ? सत्पुरुषों का कथन है:—

नानक चिंता मति करहु चिंता तिसही हेइ ॥
जल महि जंत उपाइअनु तिना भि रोजी देइ ॥
ओथै हटु न चलई ना को किरस करेइ ॥
सउदा मूलि न होवई ना को लए न देइ ॥
जीआ का आहारु जीअ खाणा एहु करेइ ॥
विचि उपाए साइरा तिना भि सार करेइ ॥
नानक चिंता मत करहु चिता तिसही हेइ ॥

गुरुबाणी, रामकली की वार म० २

अर्थ:—श्री गुरु अंगददेव जो महाराज फ़रमाते हैं कि आजीविका की चिन्ता मत करो, क्योंकि परमात्मा स्वयं सब की चिंता करता है। जल में उसने जितने जीव पैदा किये हैं, उन सबको भी वह भोजन देता है। वहां कोई हाट नहीं चलती और न ही कोई खेती-बाड़ी करता है। न कोई वहां सौदे-बाज़ी होती है और न ही वहां कोई लेन-देन है। वह प्रभु ही सब जीवों को खाना अथवा आहार देता है। जो जीव समुद्रों में पैदा किये हैं, उनकी भी सार-खबर वही लेता

है। सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि इसलिये चिंता मत करो, क्योंकि परमात्मा सबकी चिंता करता है।

अतएव इस काम की चिंता छोड़कर मनुष्य को उस काम की चिंता करनी चाहिये, जिसके लिये उसे मनुष्य-जन्म प्राप्त हुआ है और जो काम केवल इस मनुष्य-शरीर में ही हो सकता है। वह काम कौन सा है ? वह है परमात्मा का सुमिरण-भजन। सन्तों का कथन है:—

॥ दोहा ॥

फ़िकर करंते बांवरे, ज़िकर करंते साध।
उठ फरीदा ज़िकर कर, फ़िकर करेगा आप॥

शेख फरीद साहिब

फ़रमाते हैं कि जो लोग हर समय आजीविका की चिंता में परेशान रहते हैं, वे नासमझ हैं। इसके विपरीत जो चिंता छोड़कर प्रभु के भजन-सुमिरण में चित्त लगाते हैं, वे ही साधुजन एवं प्रभु के प्यारे हैं। इसलिये ऐ मनुष्य ! उठ और सुमिरण-ध्यान में चित्त जोड़; तेरी चिंता वह प्रभु स्वयं करेगा।

वैसे तो प्रत्येक जीव को परमात्मा उसके प्रारब्धानुसार आजीविका अथवा रोज़ी-रोटी देता ही है, परन्तु जो प्रेमी भक्तजन प्रभु की चरण-शरण ग्रहण कर और उन पर पूरी तरह आश्रित होकर अपनी चित्तवृत्ति को हर समय प्रभु के सुमिरण-भजन में जोड़े रहते हैं, उनका तो प्रभु विशेषरूप से ध्यान रखते हैं, जैसा कि भगवान् श्री कृष्णचन्द्र जी महाराज का कथन है:—

अनन्याश्चिन्तयन्तो मां ये जनाः पर्युपासते ।
तेषां नित्याभियुक्तानां योगक्षेमं वहाम्यहम् ॥

श्रीमद्भगवद्गीता ९/२२

अर्थः—जो अनन्य प्रेमी भक्तजन मुझ परमेश्वर का निरन्तर चिंतन-ध्यान करते हुये निष्कामभाव से मेरा भजन करते हैं, उन नित्य-निरंतर मेरा सुमिरण करने वाले मनुष्यों का "योगक्षेम" मैं स्वयं वहन करता हूँ ।

'योग' का अर्थ है—आवश्यकता के उन पदार्थों की प्राप्ति, जिसका मनुष्य के पास अभाव हो और 'क्षेम' का अर्थ है—सुरक्षा। प्रभु का आश्रय ग्रहण कर भजन-सुमिरण में मग्न रहने वाले प्रेमी भक्त के योग और क्षेम का पूरा-पूरा दायित्व प्रभु अपने ऊपर ले लेते हैं, इस कथन पर मनुष्य को तनिक भी संशय नहीं करना चाहिये, क्योंकि सृष्टि के प्रत्येक जीव के (इस बात की ओर ध्यान दिये बिना कि वह प्रभु का सुमिरण-भजन करता है अथवा नहीं) पालन पोषण की चिंता जबकि प्रभु को रहती है, तब क्या प्रेमी भक्त, जो केवल उनका ओट-आसरा ग्रहण कर हर समय उनके सुमिरण-भजन में मग्न रहता है, उसके योगक्षेम की चिंता वे न करेंगे ? अवश्य करेंगे ।

इस बात को आप यूं समझिये कि एक छोटा बच्चा माता पर पूरी तरह आश्रित होता है, अतः उसके खान-पान-पहरान तथा रक्षा की चिंता माता को ही होती है। वह हर समय उसके खान-पान एवं सुरक्षा का ध्यान रखती है। ठीक इसी

प्रकार प्रभु भी शरणागत प्रेमी भक्तों के योगक्षेम का विशेष ध्यान रखते हैं।

अपने भक्तों के योगक्षेम का दायित्व प्रभु अपने ऊपर किस प्रकार ले लेते हैं, यह नीचे लिखे प्रमाणों से स्पष्ट हो जाता है। पहले योग का प्रमाण लीजिये।

भक्त नरसी मेहता जी की जाति के कुछ व्यक्तियों ने, जो उनसे ईर्ष्या-द्वेष रखते थे, अन्य लोगों को साथ मिलाकर भक्त जी पर इस बात के लिये दबाव डाला कि वे अपने पिता का श्राद्ध करके नगर के सभी ब्राह्मणों को भोजन करायें। यही नहीं, उन लोगों ने यह बात भी नगर में फैला दी कि अमुक दिन श्राद्ध होगा। उन लोगों का विचार था कि भक्त नरसी मेहता जी चूंकि अत्यन्त निर्धन हैं, अतः वे इस श्राद्ध का प्रबन्ध न कर सकेंगे, जिससे उनकी खूब बदनामी होगी। भक्त नरसी मेहता जी तो पूरी तरह भगवान् पर आश्रित थे, अतः वे सब चिंता उसको सौंपकर सुमिरण-ध्यान में मग्न हो गये। भगवान् की कृपा से श्राद्ध के लिये सब सामग्री का प्रबन्ध हो गया। यह देखकर सभी लोग चकित रह गये कि इतने सामान का प्रबन्ध इतनी शीघ्र कहां से हो गया! श्राद्ध के दिन जबकि ब्राह्मण लोग भोजन करने के लिये एकत्र हो चुके थे, ईर्ष्यालु लोगों ने उनसे कहा कि घी कम पड़ गया है और लाइये। भक्त जी बर्तन ले कर घी लाने के लिये बाजार की ओर चल दिये। मार्ग में एक सन्त मंडली प्रेम में मग्न होकर हरि कीर्तन कर रही थी। कीर्तन श्रवण करते ही नरसी भक्त जी यह बात भूलकर कि

वे घी लाने के लिये घर से निकले हैं, उस कीर्तन में सम्मिलित हो गये। घर में ब्राह्मण भोजन कर रहे थे और नरसी जी का कहीं पता न था। जब काफ़ी देर हो गई और ईर्ष्यालु लोग उनकी पत्नी से बार-बार घी के लिये आग्रह करने लगे, तो उनकी पत्नी बदनामी होने के भय से व्याकुल और चितातुर हो गई। कृपासिन्धु भगवान् ने नरसी जी का रूप धारण किया और घी लेकर घर पहुंचे। श्राद्ध का कार्य निर्विघ्न समाप्त हुआ। बहुत देर बाद जब कीर्तन बन्द हुआ, तो भक्त जी को होश आया। वे तुरन्त बाजार गये और घी खरीदकर वापस घर पहुंचे और देर से आने के लिये सबसे क्षमा मांगने लगे। उनकी बात सुनकर सभी अवाक् रह गये। उन लोगों के मुख से जब भक्त जी को सब बात मालूम हुई, तो वे कृपालु प्रभु की कृपा को स्मरण कर आनन्दमग्न हो गये।

प्रभु का दूसरा दायित्व है 'क्षेम' अर्थात् अपने प्रेमी भक्तों की सुरक्षा। इस विषय में भक्त प्रह्लाद का प्रमाण तो प्रसिद्ध ही है। उसके पिता हिरण्यकशिपु ने उसके प्राण लेने के लिये कितने ही प्रयत्न किये—उसे पर्वत से गिराया गया, हाथी के पैरों तले कुचलवाया गया, अग्नि में जलाने का प्रयत्न किया गया—परन्तु हिरण्यकशिपु के सब प्रयत्न प्रभु की कृपा से विफल हुये और प्रह्लाद का बाल भी बांका न हुआ।

जबकि जीव पर प्रभु की ऐसी कृपा हो कि वे उसके योग-क्षेम के हर प्रकार से ज़िम्मेवार बन जायें, तो फिर जीव का भी यह कर्त्तव्य हो जाता है कि अपनी सब चिंतायें प्रभु को

सौंपकर हर समय प्रभु के सुमिरण-भजन में चित्त जोड़े रखे। बेशक संसार में रहे, संसार के कामकाज भी करे, धनोपार्जन भी करे, इससे सन्त सत्पुरुष मना नहीं करते, परन्तु हर समय रोज़ी-रोटी की चिंता में गलतान रहकर मनुष्य-जन्म के वास्तविक कर्त्तव्य अर्थात् प्रभु की भजन-भक्ति को भूल जाना—यह कदापि उचित नहीं।

इसलिये मनुष्य को चाहिये कि अपने वास्तविक कर्त्तव्य अर्थात् प्रभु की भजन-भक्ति और सुमिरण-ध्यान में अपने जीवन के स्वांसों को लगाते हुये अपना लोक-परलोक सफल करे।

उपदेश

स्वरः—कभी तेरा दामन......॥

टेकः—सतगुरु से ही तू फकत नेह लगा,
दुनिया की उलफ़त को दिल से मिटा ।

१. प्रीत है जग की सदा दुखदाई,
फिर इसमें क्यों तूने सुरति फंसाई;
सतगुरु बगैर कोई बने न सहाई ।
इस बात को सदा दिल में बसा ॥

२. तन-मन करके गुरु के हवाले,
मौज को उनकी शीश चढ़ा ले;
वही जगत में हैं तेरे रखवाले ।
टले उनकी रहमत से हर इक बला ॥

३. रहे 'दास' को तेरा हरदम सहारा,
रहे हाथ रहमत का सिर पे तुम्हारा;
हमेशा रहूं बन के खादिम तुम्हारा ।
तुम्हारे ही गुणवाद गाऊं सदा ॥

श्री अमर वाणी

माया के धोखे से बचो

संसार में ऐसा कौन प्राणी होगा, जिसको माया से प्यार न हो ? प्रत्येक मनुष्य माया से प्यार करता है। अन्य शब्दों में माया सबको प्यारी लगती है। प्रश्न उठता है कि माया किस वस्तु का नाम है ? केवल धन को ही माया नहीं कहा जाता, प्रत्युत संसार के जितने भी दृश्यमान् पदार्थ हैं, वे सब माया के अन्तर्गत आते हैं, जैसे कथन है:—

॥ चौपाई ॥

गो गोचर जहँ लगि मन जाई। सो सब माया जानेहु भाई॥

श्री रामचरितमानस, अरण्यकाण्ड

भगवान् श्री रामचन्द्र जी महाराज लक्ष्मण जी के पूछने पर माया के स्वरूप पर प्रकाश डालते हुये वर्णन करते हैं कि हे भाई ! मन और इन्द्रियों की जहाँ तक पहुँच है, वह सब माया ही जानो।

अभिप्राय यह कि धन-सम्पत्ति, स्त्री-पुत्र, मान-बड़ाई आदि सब माया ही है। अब यह देखना है कि मनुष्य को यह माया जो इस कद्र प्यारी लगती है, तो यह प्यारी वस्तु

होती हुई मनुष्य को सुखी भी करती है या नहीं । इसके उत्तर में सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि संसार में ऐसा कौन व्यक्ति है, जो संसार के सब पदार्थों को प्राप्त कर लेने पर भी गर्व से यह कह सके कि मैं पूरी तरह सुखी हूँ ?

कारण क्या है ? कारण यह कि यह वस्तु प्यारी तो हर किसी को लगती है और प्रत्येक व्यक्ति इस माया से प्यार भी करता है, परन्तु परिणाम के रूप में हर किसी को दुःख ही उठाना पड़ता है। दुःख भी एक नहीं, एक जन्म का दुःख नहीं, अपितु अनेक जन्मों तक मनुष्य इसके पंजे में आया हुआ चौरासी लाख योनियों का शिकार बना हुआ सैंकड़ों प्रकार के दुःख सहन करता रहता है ।

किन्तु बहुधा देखा जाता है कि इस माया के प्यार का परिणाम यद्यपि गलत है, अपने मुख से प्रायः लोग इसे दुखदायी वस्तु कहते भी रहते हैं, परन्तु यह सब कुछ होते हुये भी यह माया सबके गले का हार बनी हुई है और सब लोग इससे प्यार करते हैं। दुःख उठाने पर भी इसके प्यार का त्याग नहीं करते ।

यदि कोई कहे कि माया जब इस कद्र दुखदायी वस्तु है, तो इसे प्रकृति ने बनाया ही क्यों, यह एक दम संसार में होती ही न ? तो इसका उत्तर सत्पुरुषों ने यूं दिया है कि यह प्रकृति का विधान नहीं है कि माया न हो। प्रकृति ने सब वस्तुयें बना दी हैं और सत्पुरुषों ने प्रत्येक वस्तु का प्रभाव भी अलग-अलग खोलकर बतला दिया है। अब यह मनुष्य

का कर्त्तव्य है कि भलीभांति सोच-समझकर विचार करे कि उसे माया और माया के पदार्थों को किस प्रकार प्रयोग में लाना चाहिये ? यदि मनुष्य को ऐसी विधि मिल जाये, इसके प्रयोग का सही ढंग और युक्ति का पता चल जाये, तो फिर यह माया दुखरूप न होगी, प्रत्युत उसके मार्ग को साफ करती हुई उसकी सहायक एवं सुखदायी सिद्ध होगी ।

उदाहरणार्थ, आप प्रतिदिन देखते हैं कि आपके घर में आग रहती है, परन्तु उसको युक्ति से प्रयोग में लाया जाता है । यदि ज़रा सी लापरवाही करके मनुष्य उसमें हाथ दे दे, तो तुरन्त हाथ जल जायेगा । यदि कपड़ा गलती से उसमें पड़ जाये, तो तत्क्षण भड़क उठेगा । कई बार लापरवाही करने से मकान जलकर राख हो जाते हैं । थोड़ी सी लापरवाही करने से गांव के गांव जलकर भस्म हो जाते हैं । किन्तु देखना यह है कि क्या बिना आग के मनुष्य का काम भी चल सकता है ? इतनी भयजनक वस्तु होते हुये भी क्या छोटे से लेकर बड़े काम तक—कोई आग के बिना हो सकता है ? क्या धनाढ्य क्या निर्धन—कोई व्यक्ति बिना आग के निर्वाह कर सकता है ?

आप सब कहोगे कि नहीं: आग के बिना तो कोई मनुष्य रह ही नहीं सकता । संसार का सब कार्य-व्यवहार आग के ही द्वारा चल रहा है । प्रतिदिन की आवश्यकतायें, खाने-पीने के सामान—सब आग से ही सम्बन्ध रखते हैं । आशय यह कि आग जीवन का एक आवश्यक अंग है, परन्तु प्रत्येक व्यक्ति उसे युक्ति से प्रयोग में लाता है, जैसे रोटी पकानी

है तो आग पर तवा धरा जाता है जिससे कि रोटी भी पक जाये और हाथ भी न जले ।

ठीक इसी प्रकार माया को भी समझना चाहिये । उसके प्रयोग की युक्ति अथवा फारमूला हाथ लग जाये, तो वही माया मनुष्य के लिये दुखदायी न होकर सुखदायी बन जाती है । यदि माया को उपयोग में लाने का सही ढंग ज्ञात न हो, तो यह माया मनुष्य को हड़प कर जाती है और आम संसार को हड़प किये जा रही है, जैसे सत्पुरुषों ने फ़रमाया है:—

माइआ ममता मोहणी जिनि विणु दंता जगु खाइआ ॥
मनमुख खाधे गुरमुखि उबरे जिनी सचि नामि चितु लाइआ ॥

गुरुबाणी

इस मोहिनी माया ने सारे संसार को मोह लिया है और बिना दांतों के मनुष्य को खाये जा रही है । क्या अभिप्राय ? कोई इसका रूप डरावना तो नहीं, प्रत्युत अत्यन्त मनमोहक है, परन्तु अन्दर ही अन्दर यह मनुष्य को खोखला बना देती है । इसका गलत उपयोग करने, इसमे दिल फंसाने तथा इसके प्यार में अनुरक्त होने से यह माया मनुष्य को दुःखी करती है । कौन इसके आघात से कुचले जाते हैं और कौन इसके आघात से बच सकते हैं ?

सत्पुरुष अपनी बाणी द्वारा यूं फ़रमाते हैं कि मनमुख जीव, जो अपनी बुद्धि और मस्तिष्क लड़ाते हैं कि मैं बड़ा बुद्धिमान् और सूझबूझ वाला हूँ और भांति-भांति के काम कर सकता

हूं, वे अपने मन की मति पर चलने के कारण माया के अधीन होकर खाये जा रहे हैं। बड़े-बड़े दार्शनिक, गुणवान्, ज्ञानी तथा उच्च कोटि का मस्तिष्क रखने वाले भी माया का ग्रास बने जा रहे हैं । किन्तु जो गुरुमुख हैं, जिनको सत्पुरुषों की निकटता प्राप्त है, जो उनकी पवित्र मौज पर चलते हैं, उनके उपदेशानुसार जीवन व्यतीत करते हैं और उन की मौज के साँचे में अपना जीवन ढाल लेते हैं, वे सौभाग्य-शाली सत्पुरुषों की संगति के प्रताप से माया से बचने की युक्ति सीख लेते हैं। ऐसे भाग्यवन्त व्यक्ति ही माया के चंगुल से बचकर भवसागर से पार हो जाते हैं ।

आप तनिक विचार करें कि जो गुरुमुख सतसंगी सत्पुरुषों की संगति में बैठते हैं, सत्पुरुषों की निकटता में आने से उनको यह समझ आ जाती है कि माया से किस प्रकार बचकर रहना है ! यदि हर एक को यह समझ आ जाये, तो कोई माया से प्यार न करे, कोई माया के धोखे में न फंसे । किन्तु इस समझ के न होने के कारण वास्तविकता का पता न होने की वजह से सारा संसार भ्रम और भुलेखे में पड़ा हुआ है और सब लोग दुःखी और परेशान होकर अपने जीवन को नष्ट कर रहे हैं, जैसे फ़रमान है:—

माया भुलावे सब जग भुलया बिसरिया करतारा ।
माया तज भक्ति चित लावै बिरला गुरुमुख पिआरा ।।

सन्तवाणी

सारा जगत् ही माया के चक्कर में पड़कर वास्तविकता से भ्रष्ट हो गया है और मालिक की याद उनको बिसर गई

है। कोई विरले गुरु की मौज में चलने वाले गुरुमुख विचारवान् हो माया की लपेट से बचकर नाम, भक्ति और प्रभु-प्रेम में चित्त लगाते हैं।

आम लोग माया के धोखे में आकर विष को अमृत समझकर पी रहे हैं और जीते जी मृतकों की भांति जीवन व्यतीत कर रहे हैं। यथार्थ वस्तु—मालिक का नाम और भक्ति जो वास्तव मे सुख देने वाली वस्तु है उसको भूल गये हैं। यही कारण है कि माया उनके लिये दुःख का कारण बन गई है। किन्तु जो गुरुमुख विचारवान् सत्संगी लोग हैं, सत्पुरुषों की संगत मे आकर ऐसा ज्ञान प्राप्त कर लेते हैं कि माया का त्याग भी नहीं करना ऊपर-ऊपर से उसे सही और उचितरूप में प्रयोग में भी लाना है, परन्तु उसको चित्त में स्थान नहीं देना है, उसमें दिल नहीं फंसाना है। जिस माया को आम लोगों ने दिल दे रखा है, विचारवान् गुरुमुख दिल से उसका विचार हटा देते हैं।

यह है आम संसारी मनुष्यों और गुरुमुखों की मानसिक स्थिति में अन्तर। रहने को दोनों प्रकार के लोग संसार में ही रहते हैं। उनका खान-पान-पहरान भी एक-सा रहता है, प्रायः कारोबार भी एक-सा करते हैं, परन्तु आन्तरिक दृष्टि से गुरुमुख के विचार आम संसारियों से भिन्न होते हैं। वे सदैव सच्ची वस्तु को ग्रहण करने के लिये सत्पुरुषों की निकटता चाहते हैं और सत्पुरुषों की संगति के प्रताप से सत्य वस्तु मालिक की भक्ति की चाहना करते हैं और माया को सत्य वस्तु की प्राप्ति अर्थात् भक्ति-परमार्थ के मार्ग में

व्यय करके अर्थात् माया से सही काम लेकर अपने जीवन को सफल कर लेते हैं।

आम मनुष्य मन की मति पर चल कर इस माया को शरीर-इन्द्रियों के भोगों के मार्ग में व्यय करके अपने लिये नरक खरीद कर लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि माया एक छल, फ़रेब और धोखा है और सरासर झूठ है, परन्तु इसके द्वारा सच्ची वस्तु की प्राप्ति भी की जा सकती है। जिसने इस माया को पाकर इसे भक्ति-परमार्थ के मार्ग में व्यय न किया और इसके द्वारा सच्ची वस्तु को प्राप्त न किया, तो फिर इससे लाभ ही क्या हुआ ? उदाहरणार्थ एक मनुष्य की जेब में पैसा है। वह उस पैसे से बाज़ार में जाकर एक विषैली और नशीली वस्तु भी खरीद सकता है, जिसके खाने से मनुष्य की मौत भी हो सकती है और उसी पैसे से अमृत भी खरीदा जा सकता है, खाने पीने के अन्य पदार्थ भी खरीदे जा सकते हैं, जो शरीर को शक्ति पहुंचाते हैं। किन्तु यह सब बात मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। अभिप्राय यह कि वही माया दुखदायी भी हो सकती है और सुखदायी भी सिद्ध हो सकती है। यह सब कुछ मनुष्य के विचारों पर निर्भर है। यदि माया को सुखदायी मार्ग अर्थात् नाम, भक्ति एवं परमार्थ के मार्ग में व्यय करे, तो सुखदायी सिद्ध होती है, अन्यथा वही माया काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि की ओर ले जाती है, जो आत्मा के लिये घातक सिद्ध होती है, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि जहां माया व्यय होगी, वहां सुरति जायेगी और जहां-जहां सुरति जायेगी, वैसी-वैसी उसकी गति होगी। शास्त्रों का सिद्धांत है कि जिसकी माया

मकान, महल, माड़ी बनाने में व्यय होगी, उसे मरते समय उन महलों का विचार आयेगा। उन में सुरति के जाने से उसे प्रेत की योनि मिलेगी। और यदि धन में सुरति रह गई, तो सर्प की योनि मिलेगी जो विचार अन्दर में थे, उन्हीं पदार्थों का ध्यान आया और वैसी ही गति पाई। शेष पदार्थों की भी यही स्थिति समझनी चाहिये। प्रत्येक वस्तु का परिणाम पृथक्-पृथक् बतलाया गया है। जहां-जहां सुरति जायेगी, वैसी वैसी उस जीव की गति होगी।

सौभाग्य से जिनको सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, तो सत्संग के प्रताप से उनके विचार बदल जाते हैं। फिर उनके लिये वही माया दुखदायी नहीं रहती, क्योंकि वही माया उन्हें सत्पुरुषों की निकटता में लाने का कारण बन जाती है और मोक्ष-मुक्ति देने वाली हो जाती है।

आप लोग अपने दिल में अनुभव करें कि जो लोग सत्संग की परिधि में आ जाते हैं, जिन्हें सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, उनके कितने अहोभाग्य हैं कि वे मोहिनी माया के चंगुल से बचकर सत्पुरुषों की संगति में विश्राम पाते हैं। आम संसार का तो इस ओर विचार ही नहीं होता। उन लोगों के ऐसे कर्म नहीं, उनकी पिछले जन्मों की कमाई नहीं, इतने पुण्य संस्कार नहीं कि वे भजन-भक्ति और सत्पुरुषों की संगति में आ सकें। यदि उन्हें सन्मार्ग पर चलने के लिये विवश भी करेंगे, तो भी वे इनकार कर देंगे, क्योंकि यह वस्तु पूरबले संस्कारों से मिलती है।

गुरुमुख प्रेमी क्यों सत्पुरुषों की संगति के अभिलाषी होते

व्यय करके अर्थात् माया से सही काम लेकर अपने जीवन को सफल कर लेते हैं।

आम मनुष्य मन की मति पर चल कर इस माया को शरीर-इन्द्रियों के भोगों के मार्ग में व्यय करके अपने लिये नरक खरीद कर लेते हैं। इसमें सन्देह नहीं कि माया एक छल, फ़रेब और धोखा है और सरासर झूठ है, परन्तु इसके द्वारा सच्ची वस्तु की प्राप्ति भी की जा सकती है। जिसने इस माया को पाकर इसे भक्ति-परमार्थ के मार्ग में व्यय न किया और इसके द्वारा सच्ची वस्तु को प्राप्त न किया, तो फिर इससे लाभ ही क्या हुआ ? उदाहरणार्थ एक मनुष्य की जेब में पैसा है। वह उस पैसे से बाज़ार में जाकर एक विषैली और नशीली वस्तु भी खरीद सकता है, जिसके खाने से मनुष्य की मौत भी हो सकती है और उसी पैसे से अमृत भी खरीदा जा सकता है, खाने पीने के अन्य पदार्थ भी खरीदे जा सकते हैं, जो शरीर को शक्ति पहुंचाते हैं। किन्तु यह सब बात मनुष्य की इच्छा पर निर्भर है। अभिप्राय यह कि वही माया दुखदायी भी हो सकती है और सुखदायी भी सिद्ध हो सकती है। यह सब कुछ मनुष्य के विचारों पर निर्भर है। यदि माया को सुखदायी मार्ग अर्थात् नाम, भक्ति एवं परमार्थ के मार्ग में व्यय करे, तो सुखदायी सिद्ध होती है, अन्यथा वही माया काम, क्रोध, मोह, लोभ, ईर्ष्या, द्वेष आदि की ओर ले जाती है, जो आत्मा के लिये घातक सिद्ध होती है, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि जहां माया व्यय होगी, वहां सुरति जायेगी और जहां-जहां सुरति जायेगी, वैसी-वैसी उसकी गति होगी। शास्त्रों का सिद्धांत है कि जिसकी माया

मकान, महल, माड़ी बनाने में व्यय होगी, उसे मरते समय उन महलों का विचार आयेगा। उन में सुरति के जाने से उसे प्रेत की योनि मिलेगी। और यदि धन में सुरति रह गई, तो सर्प की योनि मिलेगी जो विचार अन्दर में थे, उन्हीं पदार्थों का ध्यान आया और वैसी ही गति पाई। शेष पदार्थों की भी यही स्थिति समझनी चाहिये। प्रत्येक वस्तु का परिणाम पृथक्-पृथक् बतलाया गया है। जहां-जहां सुरति जायेगी, वैसी वैसी उस जीव की गति होगी।

सौभाग्य से जिनको सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, तो सत्संग के प्रताप से उनके विचार बदल जाते हैं। फिर उनके लिये वही माया दुखदायी नहीं रहती, क्योंकि वही माया उन्हें सत्पुरुषों की निकटता में लाने का कारण बन जाती है और मोक्ष-मुक्ति देने वाली हो जाती है।

आप लोग अपने दिल में अनुभव करें कि जो लोग सत्संग की परिधि में आ जाते हैं, जिन्हें सत्पुरुषों की संगति प्राप्त हो जाती है, उनके कितने अहोभाग्य हैं कि वे मोहिनी माया के चंगुल से बचकर सत्पुरुषों की सगति में विश्राम पाते हैं। आम संसार का तो इस ओर विचार ही नहीं होता। उन लोगों के ऐसे कर्म नहीं, उनकी पिछले जन्मों की कमाई नहीं, इतने पुण्य संस्कार नहीं कि वे भजन-भक्ति और सत्पुरुषों की संगति में आ सकें। यदि उन्हें सन्मार्ग पर चलने के लिये विवश भी करेंगे, तो भी वे इनकार कर देंगे, क्योंकि यह वस्तु पूरबले संस्कारों से मिलती है।

गुरुमुख प्रेमी क्यों सत्पुरुषों की संगति के अभिलाषी होते

हैं, क्योंकि उनके पिछले जन्मों के पुण्य संस्कार हैं। वे पूरबले पुण्यकर्म उनकी सुरति पर प्रबल हो जाते हैं और उन्हें इस ओर आकर्षित करके ले आते हैं, क्योंकि यह प्राकृतिक नियम है कि सजातीय को सजातीय से प्यार होता है, जैसे कथन है:—

॥ शेअर ॥

कुनद हमजिंस बा हमजिंस परवाज़ ।
कबूतर बा कबूतर बाज़ बा बाज़ ॥

यह एक आम मिसाल है कि हर एक प्राणी अपने सजातीय से प्यार करता है। उसी प्रकार गुरुमुखों के विचार भी उन गुरुमुखों के साथ मिल जाते हैं, जिनको नाम, भक्ति एवं परमार्थ से प्यार है। वे एक-दूसरे के साथ मिलकर गुरु-दरबार में आ जाते हैं और सत्संग-सेवा का लाभ प्राप्त करते हैं। किन्तु आम संसारी मनुष्यों को यह संगति अच्छी नहीं लगती, क्योंकि उनके मन पर माया का शासन होता है। वे माया के धन्धे में ही प्रसन्न रहते हैं, परन्तु अन्त में उनका परिणाम अच्छा नहीं निकलता। इसके विपरीत जहां सत्संग होता है, नाम की चर्चा होती है, भक्ति-भजन की कार्यवाही है, वहां माया प्रवेश नहीं कर सकती। वहां सच्ची खुशी और सुख ही सुख बरसता है।

किन्तु जिस मनुष्य के हृदय में बुरे विचार भरे हुये हों, स्वाभाविक ही ऐसा मनुष्य माया के प्रभाव में आ जाता है। मन-माया के प्रभाव में आई हुई जीवात्मा जन्म-जन्म तक काल और माया की परिधि में भटकती रहती है और दुःख

पाती रहती है। अनेक जन्मों तक भरमने और भटकन के उपरांत जब कभी मालिक की दया से सत्पुरुषों की संगति का सौभाग्य उसे प्राप्त होता है, तब कहीं वह माया के पंजे से निकलकर सन्मार्ग पर आती है, जैसे फ़रमान है:—

कोटि जनम भ्रमि भ्रमि भ्रमि आइओ ॥
बडै भागि साधसंगु पाइओ ॥
गुरुबाणी

जिन विचारवान् गुरुमुखों की सुरति सद्गुरु के शब्द से जुड़ जाती है, वह सुरति शुद्ध-निर्मल होकर सद्गुरु के धाम में जा पहुँचती है। ऐसा सौभाग्यशाली अवसर और सत्पुरुषों की संगति का लाभ बड़े भाग्यों से और मालिक की कृपा से प्राप्त होता है। प्रत्येक व्यक्ति को ऐसा स्वर्णिम अवसर—नाम एवं भक्ति की कमाई करने का नहीं मिलता।

जिनको ऐसा कल्याणकारी संयोग मिल गया है, उनका कर्त्तव्य है कि इस दुर्लभ समय से पूरा-पूरा लाभ उठावें, क्योंकि समय तो किसी की प्रतीक्षा नहीं करता। जब समय हाथ से निकल जाये, तो फिर पछताने से कोई लाभ नहीं। इसलिये इस सुअवसर में भजन-भक्ति और नाम की कमाई करके सच्चा लाभ प्राप्त कर लेना चाहिये। कोई व्यक्ति मान लो इस समय में कितने ही धन—पदार्थ एकत्र कर ले और सम्पत्ति बना ले और कहे कि मैंने समय से लाभ उठाया है, परन्तु सत्पुरुषों की दूरदर्शी दृष्टि से इसे लाभ नहीं कहा जाता। क्योंकि विचार करके देखना यह है कि यदि बहुत अधिक धन कमा लिया, मान-बड़ाई प्राप्त कर ली, और

भी संसार के कई तरह के पदार्थ एकत्र कर लिये, तो क्या अन्तसमय उन पदार्थों में से कुछ साथ भी जायेगा ? जबकि वे वस्तुयें यहीं रह गईं, जीवन में भी उन पदार्थों से जीवात्मा को कोई शान्ति न मिली और अन्त समय भी कोई वस्तु काम न आई, तो सत्पुरुष फ़रमाते हैं कि वह कमाई किस लेखे में हुई ? सम्पूर्ण आयु मैं-मेरी का बोझ व्यर्थ में ढोता रहा। लाभ वह कहा जाता है, जो जीवन में भी सुख दे और अन्त में भी साथ जाये।

प्रायः कहा जाता है कि गुरुमुखों का समय अत्यन्त मूल्यवान् है, सो क्यों मूल्यवान् है ? वह इसलिये कि गुरुमुख विचारवान् जिनको सत्पुरुषों की संगति से यह समझ आ जाती है कि मूल्यवान् वस्तु मालिक की भक्ति है, मालिक के नाम का सुमिरण है, तो वे एक-एक स्वांस में मालिक का नाम जपते हैं और सत्पुरुषों की संगति में रहकर भक्ति का धन संचित करते हैं। ऐसी सच्ची पूंजी एकत्र करते हैं, जो अपने साथ ले जाते हैं।

जिन भाग्यशाली गुरुमुखों को ऐसा सुअवसर मिल जाता है, नाम-भक्ति की कमाई करने का स्वर्णिम अवसर हाथ लग जाता है, वे इस समय का पूरा-पूरा मूल्यांकन करते हैं और एक-एक स्वांस में नाम-भक्ति की कमाई करके लोक-परलोक की पूंजी एकत्र कर लेते हैं। महापुरुष भी जीव के कल्याण के लिये भक्ति एवं परमार्थ का सिलसिला रच देते हैं, स्थान-स्थान पर सत्संग, भक्ति और नाम की कमाई

करने के केन्द्र स्थापित कर देते हैं। गुरुमुखों का भी कर्त्तव्य हो जाता है कि सत्पुरुषों की आज्ञानुसार भक्ति के साधनों पर आचरण करें। नित्यप्रति भक्ति के साधनों पर नियमबद्ध रहकर मनुष्य-जन्म का सच्चा लाभ और हीरे जन्म की सफलता प्राप्त करें, जिससे इस लोक में भी सुखपूर्वक जीवन व्यतीत हो और परलोक में मालिक के दरबार में जाकर वहां भी मुख उज्ज्वल करें। गुरुमुखजन इस प्रकार से अपना लोक-परलोक संवार लेते हैं।
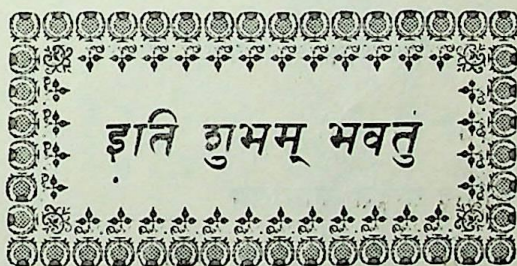
JULY 1983 Regd No. MP/GUNA/S/
R. No. 13072/57 Licence No. 62

भक्ति, प्रेम, परमार्थ, वैराग्य तथा शान्ति
का सन्देश वाहक

मासिक आनन्द-सन्देश

पढ़िये और अपनी आत्मिक प्यास बुझाईये

(१) यह मासिक पत्र श्री आनन्दपुर में तीन भाषाओं हिन्दी, उर्दू तथा सिन्धी में प्रकाशित होता है। इसके अतिरिक्त 'SPIRITUAL BLISS' नाम से अंग्रेजी में भी मासिक पत्र छपता है।

(२) आनन्द सन्देश, पाठकों को प्रत्येक अंग्रेज़ी महीने की पहिली तारीख को भेज दिया जाता है। २० तारीख तक अंक न मिलने पर अपने डाकखाने से पता करें, तत्पश्चात कार्यालय को सूचित करें।

(३) आर्डर देते समय जिस भाषा में तथा जिस मास के अंक की आवश्यकता हो स्पष्ट लिखें।

(४) पत्र-व्यवहार करते समय अपने चिट नम्बर का हवाला देना आवश्यक है।

(५) पता- परिवर्तन की सूचना २० तारीख तक कार्यालय को अवश्य भेज दें, जिस से कि समय पर कार्यवाही की जा सके।

पताः— आनन्द सन्देश कार्यालय
पो० श्री आनन्दपुर ज़िला गुना (म० प्र०)
पिन ४७३-३३८